Chap-4

अध्याय - 4

'ध्वनि -निरूपण'

कुँवरकुशल ने लखपति जससिन्धु में शब्द-शक्ति-निरूपण के बाद ध्वनि का निरूपण करते हुए ध्वनि के भेद-प्रभेदों की विस्तृत चर्चा की है। परन्तु इसका विवेचन करने से पूर्व ध्वनि शब्द के सामान्य अर्थ से अवगत होना उचित समझते हैं -

ध्वनि शब्द का सामान्य अर्थ :- ध्वनि में ध्वन धातु से इ प्रत्यय करने पर ध्वनि शब्द बनता है।[1] सामान्यत: कानों में सुनाई पड़नेवाले नाद को ध्वनि कहा जाता है। हम जो कुछ बोलते हैं उनमें किन्हीं वर्णों, पदों अथवा शब्दों का सामंजस्य रहता है। इन्हीं के द्वारा हमें अर्थ-प्राप्ति होती है। इस प्रक्रिया में स्फोट का हाथ रहता है। वैयाकरण इसी स्फोट को महत्व देते हैं। शब्द के दो रूप होते हैं एक उच्चरित रूप जो कि स्थूल और साथ ही साथ नश्वर भी होता है। यह शब्द का अनित्य प्रकार है। इसी का दूसरा स्फोट रूप नित्य और सूक्ष्म है। प्रत्येक उच्चरित वर्ण अगले क्षण अस्तित्वहीन हो जाता है और हमारे सामने क्रमश: शब्द का अगला वर्ण आता जाता है। लेकिन स्फोट हमारे मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। इसी से शब्द के अंतिम वर्ण के उच्चरित होते ही हम समग्रतया उसका अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। स्फोट में शब्द की ध्वनियों का भिन्नत्व नहीं वरन् सम्मिलित रूप विद्यमान रहता है। कोई भी एक अकेला वर्ण अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ नहीं होता। प्रथम वर्ण से लेकर अंतिम वर्ण तक क्रमश: आने पर हमारे मस्तिष्क में स्फोट की सहायता से उससे सम्बंधित आकार प्रकार की रूपरेखा स्पष्ट होने लगती है, फलस्वरूप हम उसकी अर्थक्षमता से परिचित हो जाते हैं।

काव्य में ध्वनि :- काव्य में ध्वनि तत्व को महत्व प्रदान करानेवाले ध्वनिसिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्द्धन हैं। इससे पूर्व काव्यशास्त्र के क्षेत्र में रस सिद्धान्त, अलंकार सिद्धांत तथा रीतिसिद्धांत अपनी महत्ता के चरमशिखर पर पहुँच चुके थे। ऐसे समय में ध्वनिसिद्धांत की प्रस्थापना हुई जिसने आकर उक्त सिद्धांतों के स्वरूप

1- काव्यालोक(द्वितीय उद्योत) पं० रामदहिन मिश्र, पृ० 200

को काफी हद तक धुँधला कर दिया। यहाँ पर 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग विभिन्न रूपों में मिलता है -(1) वह व्यंजक शब्द जो ध्वनि करे या करावे, (2) वह व्यंजक अर्थ जो ध्वनित करे या करावे (3) वह, (अर्थात् रस, वस्तु और अलंकार) जिसकी व्यंजना करायी जाये (4) वह (अर्थात् शब्द शक्ति व्यंजना) जिसके द्वारा व्यंजना करायी जाये (5) वह काव्य जिसमें रस, वस्तु और अलंकार ध्वनित होते हैं। अतः 'ध्वनि' शब्द व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंजना व्यापार तथा व्यंग्य काव्य के अर्थों में प्रयुक्त होता है। स्पष्ट ही ये पाँचों अर्थ परस्पर एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बंध रखते हैं और एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के विभिन्न रूपों का द्योतन करते हैं।"[1]

सामान्यतः काव्यशास्त्रीय क्षेत्र में 'ध्वनि' शब्द व्यंग्यार्थ के रूप में प्रयुक्त होता है। 'वाच्य से अधिक उत्कर्षक तथा चारुतापूर्ण व्यंग्य को ध्वनि कहते हैं।[2] जिस प्रकार बादलों में जलवर्षा की शक्ति साधारण धर्म है और बिजली की कौंध असाधारण -कदाचित सम्भवी, विशेष धर्म है उसी प्रकार संकेतित अर्थ वाले सामान्य शब्दों में अर्थ विशेष की झलक ही ध्वनि है।[3] यही व्यंग्यपूर्ण अर्थ ही वाच्यार्थ से अधिक ध्वन्यात्मकता को महत्व प्रदान करता है। इस व्यंग्य में चमत्कार का तत्व निहित रहता है लेकिन यह चमत्कार ऐसा नहीं होता जो क्षण भर के लिए मनुष्य को चमत्कृत कर दे और उसकी कौतूहल प्रवृति को भी क्षण भर के लिए ही प्रभावित करे। वस्तुतः यहाँ पर जो चमत्कार मिलता है उसका कार्य महत् है। वह इससे भी आगे बढ़कर अपने सामान्य तत्व से ऊपर उठकर मानव के हृदय को लोकोत्तर अनुभूति कराने में सहायक होता है। वास्तव में इसका आस्वादन तो कोई गुणसंपन्न तथा सहृदय ही कर सकता है। 'ध्वनि का आस्वाद काव्य तत्त्व

1- हिन्दी साहित्य कोश-पृ0 355

2- चारुत्वोत्कर्ष निबन्धना ही व्यंग्ययोः प्राधान्य विवक्षा।
हिन्दी ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ0 637

3- काव्यालोक (द्वि0 उद्योत) पं0 रामदहिन मिश्र, पृ0 196

मर्मज्ञों-भावुक सहृदयों को ही हो सकता है। कोरे शब्द-शास्त्रियों की दृष्टि जहाँ अर्थ रूप फूल के आकार मात्र को देखेगी वहाँ सहृदयों की आघ्राणशक्ति ध्वनि रूप परिमल तक पहुँच जायेगी।[1]

ध्वनिकाव्य : - अर्थ की दृष्टि से काव्य के कुछ प्रभेद किए गए हैं जिनमें ध्वनिकाव्य भी एक है। इसकी संस्कृत के तथा हिन्दी के आचार्यों ने विशद् व्याख्या की है। वास्तव में यह है भी बहुत महत्त्वपूर्ण। आनन्दवर्धन इसे शब्दार्थ और ध्वनि (व्यंग्यार्थ) में साधन साध्य का भाव स्वीकार करते हैं। इसके लिए दो उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। जिस प्रकार कामिनी के अवयव और उससे निःसृत लावण्य तथा दीपक और दीपक से निःसृत प्रकाश दोनों भिन्न होते हुए भी साधन साध्य भाव से सम्बंधित हैं उसी प्रकार का सम्बंध शब्दार्थ और उसमें अभिव्यक्त होनेवाली ध्वनि में है।[2] यही ध्वनिपूर्ण काव्य उत्तम काव्य की श्रेणी में आता है। आनन्दवर्धन ध्वनिकाव्य को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं - जहाँ पर अर्थ अथवा शब्द दोनों अपनी आत्मा और अपने अर्थ को उपसर्जन (गौण) बनाकर उस व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं वह काव्य विशेष विद्वानों के द्वारा 'ध्वनि' इस नाम से अभिहित किया जाता है।[3] काव्यप्रकाशकार वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ को अधिक सुंदर तथा चमत्कारजनक काव्य को ध्वनिकाव्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं।[4] साहित्यदर्पणकार का भी ऐसा ही विचार है।[5] आचार्य जगन्नाथ ध्वनिकाव्य को उत्तमोत्तम काव्य कहते हैं

1- काव्यालोक (द्वि0 उद्योत) पं0 रामदहिन मिश्र, पृ0 197

2- हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 183 से उद्धृत।

3- यथार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।
हिन्दी ध्वन्यालोक (प्रथम उद्योत) पृ0 188

4- इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः।
काव्य प्रकाश, पृ0 13

5- वाच्यातिशयिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्। साहित्य दर्पण, पृ0 129

और उसकी परिभाषा देते हुए कहते हैं - वहाँ व्यंग्य में ऐसा चमत्कार है जिसके प्रभाव से उपायभूत जनक शब्द और अर्थ ने अपने को अप्रधान कर लिया।[1] चिन्तामणि के मतानुसार वाच्य,लक्ष्य से भिन्न अर्थ की प्रतीति कराने वाला काव्य ध्वनिकाव्य कहलाता है।[2] कुलपति मिश्र ने व्यंग्य को काव्यात्मा मानते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है।[3] कुमार मणि व्यंग्य की प्रधानता को महत्व देकर व्यंग्यपूर्ण काव्य को ध्वनिकाव्य कहते हैं।[4] सूरति मिश्र के मतानुसार व्यंजक शब्द और व्यंजना वृत्ति के माध्यम से जहाँ अर्थ निकाला जाता हो वहाँ ध्वनिकाव्य(व्यंग्य) होता है।[5]

1- शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यंक्तस्तदाद्यम् ।
रसगंगाधर (प्रथम भाग) पृ0 61

2- वाच्य लक्ष्य ते भिन्न जे कवित्त सुनो ते अर्थ।
भासे ते सब व्यंग्य कहि बरनत सु कवि समर्थ।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी पृ0 191 से उद्धृत

3- व्यंग्य जीव ताको कहत सबद अरथ है देह।
गुन गुन भूषान भूषाने दूषान दूषान एह।
र.र.प्र.वृ. छन्द सं0 30

4- जामधि व्यंग्य प्रधान सो, उत्तम काव्य बताय।
रीति कवियों की मौलिक देन-डॉ0 किशोरीलाल,पृ0 94 से उद्धृत।

5- जहं पद के सम्बंध तें भासै अनियत अर्थ।
चतुरनि कौं सो व्यंजना तिहि धुनि काबि समर्थ।
काव्यसिद्धांत, छं0 सं0 13

भिखारीदास उत्तम काव्य में अर्थ में चमत्कारिता के महत्व को प्रतिपादित करते हैं।[1] प्रतापसाहि भी व्यंग्य की चमत्कारिता पर बल देते हैं।[2]

ध्वनिकाव्य सम्बंधी विभिन्न आचार्यों के उपर्युक्त आशयों एवम् मतों के विश्लेषण कर लेने के उपरान्त अब हम कुँवरकुशल द्वारा निरूपित ध्वनि की चर्चा करना अधिक समीचीन समझते हैं।

कुँवरकुशल ने लखपतिजससिन्धु की छठी तरंग में ध्वनि का निरूपण किया है। अर्थ की उत्कर्षता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद होते हैं - उत्तम काव्य, मध्यमकाव्य और अधमकाव्य। ध्वनि-सम्पन्नकाव्य ही उत्तमकाव्य कहलाता है। कुँवरकुशल ने चतुर्थ तरंग में उत्तम काव्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि 'काव्यपुरूष का शरीर शब्द और अर्थ है, व्यंग्य उसकी आत्मा है। जिस काव्यपुरुष की आत्मा व्यंग्य है वही उत्तमकाव्य है -

बाचक बाच्य सुदेह जो बनि। जीव व्यंग्य कौं जांनि।[3]
जीव व्यंग्य है सरस जहं लषि तहं कवि की बीक।[4]

कुँवरकुशल ने लखपति जससिन्धु की छठी तरंग के प्रारंभ में ध्वनि विचार के सम्बंध में जो मत प्रस्तुत किया है उससे ध्वनि के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है-

---

1- बाच्य अरथ तें ब्यंगि मैं, चमत्कार अधिकार।
धुनि ताही कों कहत, सोइ उत्तम काव्य विचार।।
भिखारीदास (द्वि0 खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 44

2- वाच्य अपेक्षा अरथ को व्यंग्य चमत्कृत होइ।
शब्द अर्थ में प्रकट जो धुनि कहियत है सोइ।
हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 213 से उद्धृत।

3- ल.ज.सिं0, च.त.छं0 सं0 5

4- वही - छंद सं0 6

कवित होत ध्वनि भेद कवि हरैं कविता ठौर ।
औधर कहिबैं कौं इहां मानत कवि सिर मौर ।।[1]

इसी दोहे की टीका में कहा गया है कि जहाँ कविता का ठिकाना है वहाँ ध्वनि ही ठहरती है अर्थात् कविता जैसे उच्च धरातल पर केवल ध्वनि सम्पन्न सम्पन्न काव्य ही प्रतिष्ठित हो सकता है ।

उपर्युक्त सभी विद्वानों द्वारा दी गई ध्वनिकाव्य की परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में कुँवरकुशल द्वारा दी गई परिभाषाओं का परीक्षण करते हैं तो हमें कुँवरकुशल के कथन में भिन्नता दृष्टिगत होती है । इन सभी विद्वानों की परिभाषाओं से हमारे समक्ष दो तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर आते हैं - पहला वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ का उत्कर्ष और दूसरा उक्ति का चमत्कारिक होना । आनंदवर्द्धन, मम्मट, विश्वनाथ, चिन्तामणि, कुमारमणि, सूरति मिश्र प्रभृति प्रथम तथ्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं । पंडित राज जगन्नाथ, भिखारीदास तथा प्रतापसाहि द्वितीय तथ्य को मान्यता देते हैं । कुँवरकुशल भी प्रथम वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । ध्वनि में निहित व्यंग्य चमत्कारविहीन नहीं होता । यह चमत्कार ऐसा नहीं जो केवल कौतूहल वृत्ति को शांत करता हो वरन् सहृदय पर प्रभाव डालने वाला होता है । वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की उत्कर्षता तो तभी सिद्ध होती है जब उसमें चमत्कार हो । अत: प्रथम वर्ग `चमत्कार` शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं करता । कुँवरकुशल भी प्रथम वर्ग की तरह अपना कथन प्रस्तुत करते हैं ।

ध्वनि के भेद :- ध्वनि को दो भागों में सभी विद्वानों द्वारा विभाजित किया गया है - अविवक्षितवाच्यध्वनि तथा विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि ।

1- ल.ज.सिं0, च.त.छन्द सं0 1

अविवक्षितवाच्यध्वनि :- ध्वनि काव्य का यह लक्षण मूलक प्रकार है। कुँवरकुशल के मतानुसार इसमें वाच्यार्थ की नगण्यता पाई जाती है।[1] इसके मूल में लक्षण निहित रहती है तथा यह ध्वनि प्रकार गूढ़ व्यंग्य के द्वारा सन्निहित रहता है -

मूल लछना जहां मांनिजै ।। व्यंग्य गूढ़ बरवान ।
अरथ सुकोहु अरथहु पावै ।। जांनिहू ते ध्वनि जांन ।।[2]

यहाँ पर 'ध्वनि' शब्द से तात्पर्य अविवक्षितवाच्य ध्वनि है। मम्मट भी इसी प्रकार का कथन प्रस्तुत करते हैं।[3] चिन्तामणि भी वहीं पर अविवक्षितवाच्यध्वनि मानते हैं जहाँ पर वक्ता की इच्छा वाच्यार्थ में न हो।[4] कुलपति मिश्र के मतानुसार यह गूढ़ व्यंग्य प्रधान तथा लक्षणायुक्त होता है तथा जिसमें वाच्यार्थ का कोई महत्व नहीं होता।[5] भिखारीदास भी यहाँ पर वाच्यार्थ की अनुपयुक्तता ठहराते हैं।[6]

अविवक्षितवाच्यध्वनि के दो भेद होते हैं -

(1) अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि (2) अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि ।

1- कामिन आवे अर्थकुह । ल.ज. सिं0 ष.त. छं0 सं0 3
2- ल.ज.ष.त. छं0 सं0 2

3- लक्षणामूलगूढ़ व्यंग्य प्राधान्ये सत्येव अविवक्षितं वाच्यं यत्र सः।
काव्य प्रकाश, पृ0 61

4- वक्ता की इच्छा न जहं वाच्य अर्थ में होइ ।
सो अविवक्षितवाच्य है, कहत सकल कवि लोइ ।।
हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 191 से उद्धृत ।

5- मूल लक्षणा है जहां गूढ़ व्यंग्य परधान ।
अरथ न काहू अरथ को सो धुनि जानहु जान ।।र.र., द्वि.वृ. छं0 सं0 2

6- बकता की इच्छा नहीं, वचनहि को जु सुभाउ ।
व्यंगि कढ़ै तिहि बाच्य को अबिबक्षित ठहराउ ।।
भिखारीदास (द्वि0 खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 45

(1) अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि :- कुँवरकुशल का मत है कि जहाँ पर अर्थ किसी से मिला हुआ रहता है।[1] ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन का कथन है कि जहाँ अर्थ उत्पन्न तो हो जाता है किन्तु उतने ही अर्थ का उपयोग नहीं होता- वह अर्थ अपूर्ण मालूम पड़ता रहता है। अतएव उसका सम्मिश्रण दूसरे धर्मों(अर्थों) से हो जाता है और वह अन्य का जैसा प्रतीत होने लगता है।[2] मम्मट और विश्वनाथ वाच्यार्थ का किसी अन्य अर्थ में परिणत हो जाना मानते हैं।[3] कुलपति मिश्र का भी मत है कि यहाँ पर अर्थ किसी अन्य से मिला रहता है।[4] कुँवरकुशल ने अपने लक्षण में अर्थ के किसी और से मिले रहने की ओर संकेत किया है वह अधिक तर्कसंगत है। वास्तव में देखा जाये तो प्रत्येक शब्द के तीन स्वरूप होते हैं जिनका वाच्यार्थ,लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ प्रकरणानुसार व वर्णनानुसार निकाल लिया जाया करता है। अर्थ तो शब्द में प्रारंभ से ही विद्यमान रहता है, प्रयोग करने के बाद उसका छिपा हुआ गूढ़ अर्थ प्रभासित हो उठता है, वह कहीं बाहर से आकर प्रवेशित नहीं हो जाता। इसलिए कुँवरकुशल ने अर्थ के मिलने की बात कही है। कुँवरकुशल के इस लक्षण पर 'रस-रहस्य' की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है।

(2) अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि :- कुँवरकुशल के मतानुसार जहाँ पर अर्थ(वाच्यार्थ) की विचारणा नहीं की जाती और जहाँ वाचक अपना अर्थ व्यंग्य को महत्ता देने के लिए

1- रहै मिली कोउ अरथ सों। ल.ज.सिं0,ष.त.छं0 सं0 3

2- हिन्दी ध्वन्यालोक(द्वितीय उद्योत)पृ0 340

3- काव्य प्रकाश, पृ0 61-62,साहित्य दर्पण,पृ0 130

4- अरथ और सों मिली रहै। र.र.तृ.वृ.

छोड़ देता है वहाँ पर अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि होती है।[1] ध्वन्यालोककार का मत है कि 'अविवक्षितवाच्य का दूसरा प्रकार वह है जिसमें वाच्यार्थ सर्वथा अनुपपन्न हो जाता है। उसका उपादान केवल इसीलिए होता है कि लक्ष्यार्थ की प्रतीति में वाच्यार्थ एक उपायमात्र होता है।[2] मम्मट भी वाच्यार्थ की अनुपपन्नता, असंगतता तथा अविवक्षितता को मानते हैं तथा अत्यन्त तिरस्कृत रूप में आना स्वीकार करते हैं।[3] विश्वनाथ का भी मत है कि यहाँ पर शब्दार्थ बिल्कुल तिरस्कृत रूप में आता है।[4] कुलपति मिश्र का विचार है कि जहाँ पर वाच्यार्थ की कोई गिनती नहीं होती और अपने अर्थ को छोड़ देता है वहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि होती है।[5] भिखारीदास भी वाच्यार्थ की पूर्ण त्यक्तता स्वीकार करते हैं और समयानुसार एक भिन्न अर्थ की प्राप्ति का होना मानते हैं।[6] कुँवरकुशल ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है -

है किन हीं यह संभ्रम जिय में
मूँदि रह्यौ है कली में सुबासहिं।।
होय विकास तें जान्यौं परे
यें सखी सुनि लीजियें बातकुलासहिं।

1- वहै न अरथ विचार। ल.ज.सिं0,ष.त.,छं0 सं0 3

2- हिंदी ध्वन्यालोक(द्वितीय उद्योत)पृ0 340

3- काव्यप्रकाश, पृ0 62

4- साहित्यदर्पण, पृ0 130

5- अर्थहि गने न कोइ। र.ब्र.तृ.वृ.

6- है अत्यन्त तिरस्कृती निपट तजे ध्वनि होय।
समय लक्ष्य तें पाइये, मुख्य अर्थ को गोय।
भिखारीदास(द्वितीय खण्ड)सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ0 46

ि@@@@@@@@@@@@@@@@

भोर जु भायो करो मन को

न डरो प्यो हिय में बढाय हुलासहिं ।।

आनंद पाय चकोरनि पुंज

करो किन कुंज गली को प्रकासहिं ।।[1]

यहाँ सखी की नायिका के प्रति उक्ति है । मुग्धा नायिका का वर्णन किया गया है । सखी नायिका को नायक से मिलने के लिए प्रेरित करती है । नायिका डरती है तब उसे समझाते हुए सखी कहती है कि भौंरे के मन के अनुरूप करो और डरो मत तथा कुंज गली को प्रकाशित कर दे । यहाँ पर कली वह स्वयम् नायिका है । भौंरे से नायक का प्रतिनिधित्व किया गया है । प्रकाश करना अर्थात् गमन करना है । यह सब लक्षणा के माध्यम से जाना जा सकता है ।मुख्य अर्थ तो व्यर्थ ही प्रकट होता है । अत: यहाँ अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि है ।

(2) विवक्षितवाच्यध्वनि :

अन्य विद्वानों ने इसे विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि कहा है । कुँवरकुशल के मतानुसार- जहाँ अर्थ(वाच्यार्थ) कुछ सहायता करता है, व्यंग्य का मर्म बताता है । वह विवक्षितवाच्यध्वनि है ।[2] मम्मट आचार्य की उपपन्नता के साथ-साथ व्यंग्यरूप अर्थ में विश्रान्ति भी मानते हैं । यह वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ का सहायक होता है ।[3]

1- ल.ज.सिं0,ष.त.छं0 सं0 5

2- (अ) वाच्य व्यंग्य को मरम बतावै ।ल.ज.सिं0,ष.त.छं0 सं0 6

(आ) छन्द सं0 तीन की टीका ।

3- काव्यप्रकाश, पृ0 62

साहित्यदर्पणकार भी वाच्यार्थ को विवक्षित मानने के साथ-साथ व्यंग्यार्थ ~~अन्यार्थ~~ का द्योतक मानते हैं।[1] चिन्तामणि का कहना है कि जहाँ वाच्य अर्थ विवक्षित रहता हुआ भी अन्य(व्यंग्य) अर्थ का बोधक हो।[2] कुलपति मिश्र का कथनानुसार जहाँ अर्थ व्यंग्य के काम का होता है वह विवक्षितवाच्यध्वनि कहलाती है।[3] जिस अर्थ की कवि को चाहना रहा करती है वह विवक्षितवाच्यध्वनि है, ऐसी भिखारीदास की मान्यता है।[4] अतः वाच्यार्थ की उपस्थिति को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं जिसकी सहायता से व्यंग्यार्थ प्रकाशित होता है। कुँवरकुशल भी इसी परम्परागत लक्षण को स्वीकार करते हैं।

<u>विवक्षितवाच्यध्वनि के भेद :-</u> इस ध्वनि-प्रकार के दो भेद हैं - (1) असंलक्ष्यक्रम (2) संलक्ष्यक्रम।

(1) असंलक्ष्यक्रम :- कुँवरकुशल के मतानुसार जहाँ पर व्यंग्यपूर्ण ध्वनि का कोई क्रम लक्षित नहीं होता है वहाँ पर असंलक्ष्यक्रमध्वनि होती है।[5] मम्मट ने कहा है कि विभाव, अनुभाव और [illegible] संचारी भावों की अभिव्यक्ति होती है। इनमें एक क्रम तो अवश्य रहता है लेकिन वह क्रम दृष्टिगत नहीं होता।[6] इसी को ध्यान में रखते हुए साहित्यदर्पणकार कमल और सुई का दृष्टांत देते हुए कहते हैं कि जैसे सौ कमल के पत्तों को नीचे ऊपर रखकर सुई से छेदें तो एकदम सुई सबके पार हुई प्रतीत होती है। यद्यपि सुई ने क्रम से एक-एक करके सब पत्तों में छेद किया है, परन्तु

1- साहित्यदर्पण, पृ0 129

2- हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 191 से उद्धृत।

3- र.र.तृ.वृ.छं0 सं0 5 की टीका

4- कहे बिबक्षितबाच्य ध्वनि, चाहि करै कबि जाहि।
भिखारीदास (द्वि0 खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 46

5- ल.ज.सिं0, षा.त.छं0 सं0 6 की टीका

6- काव्यप्रकाश, पृ0 64

शीघ्रता के कारण प्रत्येक की क्रिया पृथक्-पृथक् प्रतीत नहीं होती, उसी प्रकार इन रस, भाव आदि कों की प्रतीति, विभावादि से ज्ञानपूर्वक ही होती है, अत: कार्य कारण के पौर्वापर्य का क्रम तो अवश्य रहता है, परन्तु वह अति शीघ्र हो जाने के कारण लक्षित नहीं होता।[1] इसे रसव्यंग्य अथवा रसध्वनि की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। मम्मट ने इसकी विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि यहाँ पर रसभावादि रूप अभिव्यंग्य अर्थ प्रधानतया अवस्थित अथवा एकमात्र चमत्कारजनक हुआ करते हैं इसलिए अलंकार्य कहलाते हैं और रसवतादि अलंकारों से भिन्न हुआ करते हैं।[2] भिखारीदास भी रसपूर्णता की चारुता में ही असंलक्ष्यक्रम ध्वनि की निहिति मानते हैं।[3]

कुँवरकुशल ने असंलक्ष्यक्रम ध्वनि के अंगों का अनेकविध प्रकार से वर्णन होना मानते हैं। इसमें नव रस, भाव, भावाभास, भावसंधि, भावशबलता, भावशान्ति, भावोदय आदि आते हैं -

> बहुत भाँति सौं बरनियें अक्रम ध्वनि के अंग।
> रस नवभाव अनेक रहि रचि आभासहि रंग।
> संधि सबलता शांति यें उदय भाव उदय भाव उर आंनि।।
> निरषहु तहां जु नाम ये एई प्रभु पहचांनि।।[4]

असंलक्ष्यक्रमध्वनि की संख्या की अनन्तता की ओर मनीषियों द्वारा संकेत किया गया है। रसध्वनि के भेदों की गणना की जाये तो इसका कोई अंत ही नहीं मिलेगा। इसलिए इन समस्त प्रकारों को असंलक्ष्यक्रमध्वनि में सन्निहित कर लिया और

1- साहित्यदर्पण, पृ0 132

2- काव्यप्रकाश, पृ0 64-65

3- असंलच्छिक्रम व्यंगि जहँ, रसपूरनता चारु।
लखि न परै क्रम जहि, द्रवै सज्जन चित्त उदारु।।
भिखारीदास (द्वि0खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 46

4- ल.ज.सिं0, षा.त.छं0 सं0 7,8

इसका एक ही प्रकार माना है। क्योंकि रसआदि के आधार पर इनकी गणाना संभव नहीं। इसलिए रसध्वनि का एक ही भेद है क्योंकि चाहे जितने भी इसके भेद प्रभेद और उनके भी अवान्तर भेद होते रहें, उनमें 'असंलक्ष्यक्रमव्यंगता' रूप धर्म तो एक रूप ही है और सर्वत्र ही अनुस्यूत है।[1] यहाँ तक तो कुँवरकुशल भी मम्मट से सहमत है परन्तु आगे मम्मट द्वारा पद, पदांश, रचना, वर्ण, वाक्य और प्रबंधगत इत्यादि के आधार पर जो छ: भेदवर्णित हुए हैं उन्हें कुँवरकुशल ने नहीं स्वीकारा है।

जिस प्रकार मम्मट ने काव्यप्रकाश में 'ध्वनि निरूपण' के अंतर्गत 'असंलक्ष्यक्रम-व्यंग्य में रस का विवेचन ~~00000000~~ किया है उसी प्रकार कुँवरकुशल ने भी अपने 'लखपति जससिन्धु' में रस का विवेचन किया है। प्रारंभ में जिस प्रकार मम्मट ने भरतमुनि के सूत्र की व्याख्या करते हुए चारों व्याख्याता भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक तथा अभिनवगुप्त के मतों का विस्तृत वर्णन किया है, कुँवरकुशल ने इस प्रकार का वर्णन नहीं किया है, शेष सारे वर्णन में मम्मट से पर्याप्त सहायता ली है। कुँवरकुशल ने सर्वप्रथम भाव की व्याख्या की है क्योंकि रस भाव के ही आश्रित रहता है। रस में भाव की महत्ता सर्वाधिक है। भाव का लक्षण देते हुए कुँवरकुशल कहते हैं कि -

रहत हियो तब लगिहि रहत हैं, भनि वृत्तिनि कौ भूप।
निश्चल मन की वास सुनिरषहु भाव वासना रूप ।।[2]

अर्थात् हृदय में अवस्थित वासना रूप ही प्रकारान्तर से भाव कहलाते हैं। भाव मानव हृदय में सर्वत्र ही विद्यमान रहते हैं। चिन्तामणि भी सामाजिक के अन्त:करण में वासनारूप से स्थित मनोविकारों को भाव कहते हैं।[3] कुलपति मिश्र भी वासना रूप में

1- काव्यप्रकाश, पृ0 113

2- ल.ज.सिं0, ष.त.छं0 सं0 9

3- मनविकार कहि भाव सों करन वासना रूप।

हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 284 से उद्धृत।

अवस्थित संस्कार को भाव कहते हैं।[1] सोमनाथ ने भाव को वासनारूप के साथ-साथ रसानुकूल विकार भी माना है।[2]

कुँवरकुशल का लक्षण देखें तो वह पूर्णत: लागू नहीं हो पाता। भाव को सब 'वृत्तिनि को भूप' और 'निहचल' मानने पर केवल स्थायी भाव का ही समावेश हो सकता है। तब संचारी भाव इसके अंतर्गत नहीं आ पाते हैं। अत: यह लक्षण अव्याप्ति दोष से दूषित है। कुँवरकुशल ने अपना लक्षण पूर्णतया कुलपति मिश्र के लक्षण के आधार पर ही दिया है।

कुँवरकुशल ने भाव के चार भेद बताये हैं -

बनि विभाव अनुभाव बनि। संचारी कौ संग।
चौथो याही मैं चतुर रुचि जे स्थायी रंग ।।[3]

विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा स्थायी भाव ये भाव के चार प्रकार हैं। सात्त्विक भाव अनुभाव में ही मिला रहता है इसलिए उसे अलग नहीं माना है।[4] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ भी सात्त्विक भावों को अनुभाव में ही समाहित करते हैं।[5] केशवदास सात्त्विक भावों को पाँचवा प्रकार भी मानते हैं।[6] कुलपति मिश्र भाव के चार

1- थिर्‍या रहै तब लग रहै, सब वृत्तिनु को भूप।
निहचल इच्छा वासना भाव वासना रूप ।। र.र.वृ.वृ. छं0 सं0 9

2- चित्तवृत्ति ही लौं ठहराय। भाव वासना रूप बताय।
रस अनुकूल विकार जु होत। तासौं भाव कहत कवि गोत ।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 319 से उद्धृत।

3- ल.ज.सिं0, ष.त. छन्द सं0 20

4- अरु सात्त्विक भाव जो है सो अनुभाव ही मैं मिलत है। तातें न्यारों न कह्यौं।
वही- छंद सं0 20 की टीका।

5- सात्त्विकाश्चानुभावरूपत्वान्नपृथगुक्ता: ।साहित्यदर्पण, पृ0 47

6- भाव सु पंच प्रकार के, सुनि बिभाव अनभाव।
थाइ, सात्त्विक कहत हैं, व्यभिचारी कबिराव ।।
केशवदास (रसिकप्रिया) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 31

ही भेद स्वीकार करते हैं।[1] देव ने भाव के दो भेद माने हैं- कायिक(इसके अंतर्गत सात्त्विक भाव लिए हैं) मानसिक(इसके अंतर्गत संचारीभाव लिए हैं)।[2] सोमनाथ भी भाव के चार भेद बताते हुए उन्हें दो वर्ग आंतरिक और शारीरिक के अंतर्गत विभाजित करते हैं।[3]

अत: हम देखते हैं कि कुँवरकुशल ने भाव के प्रमुख चार भेद तो बताये हैं परन्तु उन्हें किसी वर्ग में विभाजित नहीं किया है। अब हम कुँवरकुशल द्वारा प्रस्तुत भाव के प्रत्येक प्रकार के लक्षणों को देखें -

विभाव :

कुँवरकुशल के मतानुसार विभाव जगत् में लोगों के हृदय में रहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं - आलम्बन और उद्दीपन -

कहि विभाव द्वै भाँति कौ हिये जगत के हुअ।
एक आलंबन पहिलौ दुहां उद्दीपन है दूअ ।।[4]

साहित्यदर्पणकार ने भी कहा है कि लोक में जो रत्यादि के उद्बोधक हैं वे ही काव्य और नाटकादिकों में विभाव कहलाते हैं।[5] चिन्तामणि के मतानुसार-

---

1- सो भाव चार प्रकार से रस होते हैं-विभाव, अनुभाव, संचारी, स्थायी भाव और सात्त्विक भाव जो है से अनुभाव ही में मिलता है। इस कारण पृथक् नहीं कहा।" र.र., वृ.वृ. छं0 सं0 10 की टीका।

2- हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी पृ0 316 से उद्धृत।

3- भाव सु द्वै विधि उर में आनो। अंतर अरु सारीरिक मानौ।
अंतर के थाइ संचारी। और जानि सारीरिक भारी ।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 319 से उद्धृत।

4- ल.ज.सिं0, षा.त.छं0 सं0 11

5- रत्याद्युद्बोधका लोके विभावा: काव्यनाट्ययो:। साहित्यदर्पण, पृ0 64

लोक में स्थायिभाव के कारण (रामादि) काव्य-नाटक में वर्णित किए जाने पर विभाव कहाते हैं।[1] कुलपति मिश्र का कथन है कि लोक में जिनके प्रति और जिनमें स्थायी भाव प्रकट होते हैं उन्हें विभाव कहते हैं।[2] देव विभावों को रस का उपजावक तत्व मानते हैं।[3] सोमनाथ का मत है कि जहाँ पर जिनसे स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें विभाव कहा जाता है।[4] जिसके हृदय में रस की उत्पत्ति होती है, उसे विभाव कहते हैं, ऐसी भिखारीदास की मान्यता है।[5] प्रतापसाहि भी जिनके द्वारा जगत् में रति आदि स्थायी भाव प्रकट होते हैं उन्हें विभाव मानते हैं।[6]

अत: हम देखते हैं कि कुँवरकुशल की परिभाषा साहित्यदर्पण के आधार पर दी गई है परन्तु उतनी स्पष्ट नहीं हो पाई है जितनी विश्वनाथ की है और उन्हीं के आधार पर दी गई चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, सोमनाथ, तथा प्रतापसाहि की है। कुँवरकुशल विभावों की लोक-हृदय में अवस्थिति तो मानते हैं परंतु इनके द्वारा (स्थायी भाव की उद्बुद्धि) जो कार्य सम्पन्न होता है उसकी चर्चा नहीं की है।

आलंबन तथा उद्दीपन विभाव :- कुँवरकुशल आलंबन और उद्दीपन विभाव का लक्षण देते हुए कहते हैं कि जो स्थायी भाव के निवास स्थान हैं उन्हें आलंबन विभाव कहते हैं और

1- थाइ हेतु जग मध्य जो कवित्त मध्य सु विभाव।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 288 से उद्धृत।

2- जिन तें जिनको जगत प्रगटत है थिर भाव।
तेई नित्य कवित्त में पावहिं नाम विभाव। र.र.तृ.वृ.छं0 सं0 10

3- + + + विभाव, रस के उपजावन। शब्द-रसायन-सं0 डॉ0 जानकीनाथसिंह मनोज पृ0 83

4- जिहि ते उपजतु है जहाँ जिहिं के थाई भाव।
तासों कहत विभाव सब समुझि रसिक कविराव।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 320 से उद्धृत।

5- जाको रस उत्पन्न है, सो विभाव उर आनि।
भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 4

6- जिन तें प्रकटत जगत में रति आदिक थिर भाव।
पावत है सु कवित में तेई नाम विभाव।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 360 से उद्धृत।

जिनको देखने से स्मृति जाग्रत होती है उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं -

थानक जे थिर भाव से आलंबन वे आँहि ।
जिनि देखे तैं सुधि जगैं तकि उद्दीपन ताहिं ।।
नवल नारि नायक नवल रति आलंबन रोप ।
बरषा बन सज्या बसन ये उद्दीपन ओप ।।[1]

साहित्यदर्पणकार भी नायक आदि को आलंबन ~~जो रस को उद्दीपित करते हैं वे उद्दीपन विभाव कहाते हैं~~ ।[2] विभाव मानते हैं क्योंकि उन्हीं का आश्रय लेकर रस की निष्पत्ति होती है । और रस को उद्दीपित करते हैं वे उद्दीपन विभाव कहाते हैं । कुलपति मिश्र का विचार है कि जिनमें स्थायी भाव निवास करते हैं वे आलंबन विभाव हैं तथा जिनको देखने से याद आती है वे उद्दीपन विभाव हैं, नायक नायिका आलंबन हैं और वन, बादल, शरद् तथा बसंत आदि उद्दीपन हैं ।[3] सुरति मिश्र के मतानुसार जिन पर अवलंबित रहते हैं और जो दीप्ति करते हैं वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं ।[4] सोमनाथ ने कहा है जो स्थायी भावों का बसेरा है वह आलंबन है और जिन्हें देखकर चमक उठें उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं ।[5] ~~और पवन की तरह~~

1- ल.ज.सिं0, ष.त.छं0 सं0 12, 13

2- आलम्बनो नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात् ।
उद्दीपन विभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये । साहित्यदर्पण, पृ0 65, 93

3- जे निवास थिर भाव के ते आलंबन जानि ।
सुधि आवैं जिनके लखें ते उद्दीप बखानि ।
आलंबन रति के कहत नवल नारि अरु कंत ।
उद्दीपन बहु भांति हैं बन घन शरद वसंत ।। र.र.तृ.वृ.छंद सं0 12

4- आलंबन अवलंबि जिन जिन कौ रस आइ ।
जिनतें दीपत ह्वै बढ़ै ते उद्दीपन गाइ ।। काव्यसिद्धांत, छं0 सं0 46

5- थाइ भावनि कौजु बसेरौ, सो विभाव आलंबन हेरौ ।
चमकि उठैं पुनि जाहि निहारैं । सो उद्दीपन कहत पुकारैं ।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 320से उद्धृत ।

भिखारीदास भी आलंबन विभाव पर रस की अवस्थिति मानते हैं और पवन से अग्नि के उद्दीप्त होने की तरह ही उद्दीपन विभाव से रस की उद्दीप्ति मानते हैं।[1]

इन सभी विद्वानों के लक्षणों को देखने पर विदित होता है कि इन्होंने भावों को उद्दीप्त करनेवाले तत्वों को उद्दीपन विभाव कहा है। कुँवरकुशल ने अपना लक्षण कुलपति मिश्र के 'रस रहस्य' के आधार पर किया है। जिस प्रकार कुलपति मिश्र ने 'सुधि आवैं' शब्द का प्रयोग किया है, कुँवरकुशल ने भी 'सुधि जगें' शब्द का प्रयोग किया है। डॉ० सत्यदेव चौधरी कुलपति मिश्र के 'सुधि आवैं' का प्रयोग अनुचित मानते हुए कहते हैं कि -'उद्दीपन विभाव के लक्षण में 'सुधि आवैं' पाठ भ्रांत है। इसके स्थान पर 'दीपि(दीप्ति) होवैं' पाठ होना चाहिए- उद्दीपन विभाव स्थायिभाव को उद्दीप्त करते हैं, न कि इनकी सुधि दिलाते हैं।[2] परन्तु ऐसा सत्य प्रतीत नहीं होता। उद्दीपन विभाव के द्वारा स्थायी भाव उद्दीप्त ~~छप~~ तो अवश्य होते हैं परंतु जो उद्दीपक तत्व हैं उन्हें देखकर ही आलम्बन की स्मृति आती है। यह प्रक्रिया पहले होती है तब कहीं जाकर स्थायी भाव उद्दीप्त होता है । यह प्रकारान्तर से निकलने वाला परिणाम है। बिना आलम्बन की स्मृति आये कभी भी रस उद्दीप्त नहीं हो पाता। अत: कुलपति मिश्र का 'सुधि आवैं' अथवा कुँवरकुशल का 'सुधि जगें' शब्द उचित प्रयुक्त हुआ है। जैसा कि उदाहरण से ही स्पष्ट है कि नायक नायिका आलंबन विभाव है, वर्षा ऋतु, बन, सज्जा तथा वस्त्र इत्यादि उद्दीपन विभाव है। इन उद्दीपन तत्वों को देखने से आलंबन की स्मृति आना स्वाभाविक है तत्पश्चात् ही श्रृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' उद्दीप्त हो ~~uccca~~ उठता है।

1- आलम्बन बिनु कैसेहु, बसि ठहरै रस रंग।
उद्दीपन ते बढ़त ज्यों, पावक पवन प्रसंग।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 41

2- हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 302

अनुभाव :

कुँवरकुशल ने कहा है चुम्बन, आलिंगन, दृष्टि, वक्र वचन(उक्ति) इत्यादि सभी अनुभाव हैं और सभी रसों में आते हैं -

चुंबन आलिंगन चितै बक्र बचन विधि बात ।
यहै सबै अनुभाव है सब रस मैं सरसात ।। [1]

साहित्यदर्पणकार के विचारानुसार- आलम्बन, उद्दीपन कारणों से रामादि के हृदय में उद्बुद्ध इत्यादि को बाहर प्रकाशित करनेवाला, लोक में जो रति का कार्य कहाता है, वही काव्य और नाट्य में अनुभाव कहाता है। [2] चिन्तामणि ने कहा कि अनुभाव कारण रूप है। कटाक्ष, मधुर अंग, और स्थायी भाव को पुन: प्रकट करते हों वे अनुभाव हैं। [3] मतिराम का विचार है कि जिनसे चित्त में स्थित रति भाव का अनुभव हो, नेत्र, वचन प्रसाद, मृदु, हास, धृति, प्रसन्नता इत्यादि से रति भाव प्रकट होता है वे अनुभाव हैं। [4] कुलपति मिश्र के कथानुसार जो हृदयस्थ स्थायी भावों को औरों के

1- ल.ज.सिं0, षा.त.छं0 सं0 14

2- उद्बुद्ध कारणै: स्वै: स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लोके य: कार्यरूप: सोऽनुभाव: काव्यनाट्ययो: ।। साहित्यदर्पण, पृ0 92

3- इति कारज अनुभाव गनि, ए कटाक्ष दै आदि ।
मधुर अंग इहाँ कहै, सहृदय सुखद अनादि ।।
जे पुनि काहू भाव को प्रकट करै अनयास ।
ताहि कहत अनुभाव हैं, सब कवि बुद्धि विलास ।।
हिंदी रीति परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 288 से उद्धृत ।

4- जिनतें चित रति भाव को आछो अनुभव होय ।
रस सिंगार अनुभाव तिहि बरनत कबिसब कोय ।।
लोचन, बचन, प्रसाद, मृदु, हास, भाव, धृति मोद ।
इनतें प्रगटत भाव रति, बरनहिं सुकबि बिनोद ।।
मतिराम-ग्रंथावली-सं0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 321

प्रति प्रकट कर देते हैं, वे अनुभाव हैं जैसे वचन, वक्रदृष्टि आलिंगन चुम्बन तथा सात्त्विक भाव इत्यादि।[4] सूरति मिश्र ने आंतरिक भावों के बोधक तत्वों को अनुभाव माना है।[5] देव अनुभाव को पुनः अनुभव कराने वाले तत्व मानते हैं।[1] सोमनाथ भी रस को प्रकट रूप में दिखानेवाले तत्वों को अनुभाव कहते हैं ।[2] भिखारीदास की मान्यता है कि कहीं क्रिया, कहीं वचन तथा कहीं चेष्टा द्वारा हृदय की गति जानी जाती हो उन्हें अनुभाव कहते हैं।[3] प्रतापसाहि का विचार है कि जो रस की प्रतीति कराते हैं वे अनुभाव हैं जैसे भुजाक्षेप, कटाक्ष, वचन, आलिंगन आदि।[4]

इन विद्वानों की परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में कुँवरकुशल द्वारा दी गई परिभाषा को देखते हैं तो वह अपूर्ण प्रतीत होती है। क्योंकि सभी विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के अनुभावों के साथ-साथ अनुभाव का अर्थ भी बताया है परन्तु कुँवरकुशल ने मात्र अनुभावों के प्रकार तो बता दिये हैं लेकिन अनुभाव किसे कहते हैं अथवा अनुभाव के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया है । दूसरे कुँवरकुशल ने कुलपति मिश्र की तरह सात्त्विक भावों को अनुभाव में समाहित किया है। (जिसका उल्लेख भाव-भेद के प्रसंग में किया है) लेकिन यहीं पर विभिन्न प्रकार के अनुभाव बताते हुए सात्त्विक भावों का स्पष्ट उल्लेख किया है। भिखारीदास ने भी सात्त्विक भावों को अनुभाव में अन्तर्निहित

1- रस अनुभव अनुभाव । । । ।" ~~क.न. सिं०, भा.त. क्र० सं० 14~~

शब्द रसायन- सं० डॉ० जानकीनाथसिंह 'मनोज' पृ० 83

2- दरसावै परकास रस सो अनुभाव बखानि ।

हिंदी रीति परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ० सत्यदेव चौधरी, पृ० 320 से उद्धृत ।

3- कहूँ क्रिया कहुँ वचन तें, कहूँ चेष्टा ते देखि ।
जी की गति जानि परै, सो अनुभाव विशेषी ।।

भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 4

4- जे प्रतीति रस की करत तें अनुभाव प्रमाण ।
भुज उक्षेप कटाक्ष वच आलिंगन ये जान ।।

हिंदी रीति परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ० सत्यदेव चौधरी, पृ० 361 से उद्धृत ।

किया है। कुँवरकुशल ने ऐसा भी कोई प्रयास नहीं किया है। अत: अनुभाव के प्रकारों से तो अवगत होते हैं परंतु अनुभाव का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है।

सात्त्विक भाव :

कुँवरकुशल ने सात्त्विक भावों का निरूपण इस प्रकार किया है -

पुलक लीनता कंप है। स्वेद स्तंभ सुरभंग।
आँसू ब्विरन आठ हूं। सोहैं सात्विक संग ।।[1]"

पुलक, लीनता, कंप, स्वेद, स्तंभ, स्वरभंग, आंसू, वैवर्ण्य ये आठ प्रकार के सात्त्विक भाव हैं। विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में सात्त्विक भावों का क्रम भिन्न प्रकार से निरूपित किया है।[2] हिंदी में भी केशवदास[3], मतिराम[4], कुलपति मिश्र[5], देव[6],

---

1- ल.ज.सिं0, छा.त.छं0 सं0 15

2- स्तम्भ: स्वेदोऽथ रोमांच: स्वरभंगोऽथ वेपथु: ।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका : स्मृता : ।।
साहित्यदर्पण, पृ0 94

3- स्तंभस्वेद रोमांच सुरभंग कंप बैबर्न्य ।
आँसू प्रलय बखानिये आठौं नाम अनन्य ।।
केशवदास (रसिक प्रिया कविप्रिया) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 32

4- स्तंभ, स्वेद, रोमांच, सुर-भंग, कंप, बैबर्न ।
आँसू औरौ प्रलय कहि, आठौ ग्रंथन वर्न ।।
मतिराम-ग्रंथावली-सं0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 322

5- बधि रहिबो सुरभंग पुनि कंप स्त्वेद अंसुवानि ।
रोमविवर्न रू अंत तनु सात्त्विक भावनि जानि ।।
र.र., तृ.वृ., छन्द सं0 14

6- तंभ, स्वेद, रोमांच, अरु, बेपथु कहि स्वर-भंग ।
विवरनता, आँसू, प्रलय, ये सात्त्विक रस अंग ।
शब्द-रसायन, सं0 डा0 जानकीनाथसिंह मनोज पृ0 85

सुरति मिश्र[1] तथा भिखारीदास[2] ने भी किन्हीं नाम परिवर्तन तथा क्रम परिवर्तन के साथ इन्हीं आठ प्रकार के सात्त्विक भावों का चित्रण किया है। कुँवरकुशल द्वारा निरूपित सात्त्विक भावों में कुछ भिन्नता दृष्टिगत होती है। प्रथम तो इन्होंने क्रम में परिवर्तन कर दिया है लेकिन वह उचित नहीं है। इन्होंने लीनता को (अन्य विद्वानों द्वारा निरूपित प्रलय) द्वितीय स्थान पर रखा है। लीनता तो अंतिम अवस्था है जिसका अर्थ विनष्टि अथवा मरण होता है। इसे द्वितीय स्थान पर रखना उचित नहीं जिससे क्रमभंग का दोष आ गया है। दूसरे इन्होंने दो सात्त्विक भावों का नामकरण अपने ढंग से किया है। पुलक (जिसे अन्य सभी विद्वानों ने रोमांच कहा है) ~~नवीन~~ भिन्न नामकरण दिया है। स्वयं कवि को पुलक का अर्थ रोमांच ही अभिप्रेत है क्योंकि टीका में पुलक का अर्थ 'रोम खडे होहिं' किया है। ज्ञान शब्दकोश में भी पुलक के अर्थ- हर्ष, भय आदि के कारण रोंगटे खड़े हो जाना, लोमहर्षण, रोमांच इत्यादि बताये हैं।[3] तथा प्रलय को 'लीनता' कहा है। इसे ही कुलपति मिश्र ने अंततनु कहा है। ~~इससे कुँवरकुशल की अपनी मौलिक विचारधारा का परिचय मिलता है। जहाँ कुछ नवीनता प्रस्तुत करने का अवसर मिला है, उसका लाभ उठाया है।~~

स्थायी भाव :

कुँवरकुशल ने रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय नामक आठ प्रकार के स्थायी भाव बताये हैं -

---

1- स्तंभ स्वेद सुरभंग कंपनि विवर्न, अंसु रोमांच प्रलय विधि सातुक सो लीह्यें।
काव्य सिद्धांत, छन्द सं0 45

2- स्तंभ स्वेद रोमांच अरु स्वरभंगहि करि पाठ।
बहुरि कंप बैबर्न्य है अंसु प्रलय जुत आठ।
भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 51

3- ज्ञान शब्द कोश, सं0 मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, पृ0 89

रति हाँसी औ सोक रचि क्रोध उछाह कहाय ।
भयरू जुगुप्सा कौं भनत बिस्मय स्थायि बताय ।।[1]

मम्मट ने भी आठ प्रकार के स्थायी भाव बताये हैं[2] तथा विश्वनाथ ने 'शम' को मिलाकर नौ स्थायी भाव कहे हैं।[3]

हिन्दी में केशवदास[4], कुलपति मिश्र[5], भिखारीदास[6], ने मम्मट के अनुकरण पर आठ स्थायी भाव बताये हैं तथा चिन्तामणि[7], देव[8], सुरति मिश्र[9] तथा सोमनाथ[10] ने साहित्यदर्पणकार की भाँति नौ स्थायी भाव स्वीकार

1- ल.ज.सिं0, षा.त.छं0 सं0 16

2- रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयन्तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ।। काव्यप्रकाश, पृ0 94

3- रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च ।। साहित्य दर्पण, पृ0 105

4- रति हाँसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान ।
भय निंदा बिस्मय सदा थाइ भाव प्रमान ।।
केशवदास (रसिकप्रिया कविप्रिया)। सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 31

5- रति रु हास अरु सोक पुनि कहत क्रोध उत्साह ।
भयरू गिलानि आचिरज थिर भावनि कबि नाह ।। र.र.वृ.वृ.छं0 सं0 34

6- प्रीति हँसी अरु सोक रिस, उत्साहो भय चित्त ।
घिन, विस्मय थिर भाव ये आठ बसैं सुभचित्त ।।
भिखारीदास (द्वि0 खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 26

7- प्रथमहिं रति अरु हासपुनि बहुरि लोक गन क्रोध ।
पुनि उत्साह जुगुप्स पुनि विस्मय समभय बोध ।।
हिंदी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य-डा0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 28 से उद्धृत ।

8- रति हाँसी अरु सोक, रिस, अथ उछाह, भयजानि,
निंधा, बिस्म, सांत ये, नव थित-भाव बखानि ।।
शब्द रसायन, सं0 डा0 जानकीनाथसिंह मनोज पृ0 83

9- रति हाँसी सोक क्रोध उछाह रु भय निंदा विस्म सम थाइ भाव नीकैं जानी रहियै
काव्यसिद्धांत, छंदसं0 45

10- थिर अति थाइ भाव बखानौं । सब भावनि को ठाकुर जानौं ।
नौ विधि ताहि हिय में आनौ । सो अब परगट कहत सुमानौ ।
हिंदी रीतिपरंपरा के प्रमुख आचार्य, डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 32 से उद्धृत ।

किए हैं।

अत: कुँवरकुशल के द्वारा निरूपित स्थायी भावों में कोई नवीनता नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त कुँवरकुशल ने स्थायी भाव का लक्षण नहीं दिया है, केवल नाम ही गिना दिये हैं।

संचारी भाव :- कुँवरकुशल ने तैंतीस प्रकार के संचारी भाव इस प्रकार बताये हैं -

निरबेद ग्लानि संका असूया औ
मद श्रम आलस्य दैन्य चिंता मोह सुधि धारियै।
धृति लाज चपलता हरष आवेग होत
जडता रू गर्व बिषवाद कौं विचारियै।।
औत्सुक्य नींद अवहत्थ अपसमार सोइ बोइ बोध
अमरष अवहित्था उग्रता सुमति भारियै।
व्याधि उनमाद औ मरन त्रास है बिचार
ग्रन्थनि मैं गाये यह तेंतीस संचारियै।।[1]

कुँवरकुशल ने संचारी भावों का क्रम पूर्णत: मम्मट के आधार ही प्रस्तुत किया है।[2] इनके लक्षण-निरूपण में विश्वनाथ तथा कुलपति मिश्र से पर्याप्त मदद ली गई है जिनमें से कुछ संचारी भावों के लक्षण द्रष्टव्य हैं -

---

1- ल.ज.सिं0, ष.त., छं0 सं0 17

2- निर्वेद ग्लानि शंकाख्यास्तथाऽसूयामदश्रमा:।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्तामोह: स्मृतिर्धृति:।।
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एवच।।
सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च।।
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिण:।
त्रयस्त्रिंशदमी भावा: समाख्यातास्तु नामत:।।

काव्यप्रकाश, पृ0 91-92

विश्वनाथ के आधार पर दिये गये लक्षण :-

निर्वेद :- तत्वज्ञान तें जगत सुख खारो लगत चितखेद ।।
इर्ष्या निज अपमान तें उपजै यों निरवेद ।।[1]

साहित्यदर्पण का लक्षण :
तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादिर्निर्वेदः स्वावमाननम् ।[2]

ग्लानि :- छुधा तृषा तें ह्वै खारी गनिबल हानि ग्लानि ।[3]

साहित्यदर्पण का लक्षण -
रत्यायासमनस्तापक्षुत्पिपासादि संभवा ।[4]

कुँवरकुशल ने विश्वनाथ द्वारा बताये गये प्रथम तीन कारण रति, परिश्रम तथा मनस्ताप नहीं लिये हैं केवल क्षुधा, तृषा ही ग्रहण किये हैं।

चपलता :- राग द्वेष मत्सर रची चपलता सुचित लाउं ।[5]

साहित्यदर्पण का लक्षण -

मात्सर्यद्वेषरागादेश्चापल्यं त्वनवस्थिति : ।[6]

1- ल. ज. सिं0, ख. त., छं0 सं0 18
2- साहित्यदर्पण, पृ0 95
3- ल. ज. सिं0, ख. त. छं0 सं0 19
4- साहित्यदर्पण, पृ0 103
5- ल. ज. सिं0, ख. त., छन्द सं0 26
6- साहित्यदर्पण, पृ0 103

उत्सुकता :- करै विलंब न काम की यों औत्सुक्य अपार ।[1]

साहित्यदर्पण का लक्षण :

इष्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालक्षेपासहिष्णुता ।[2]

अपस्मार :- ग्रह भूतनि के दुष्ट गह्यौ अपस्मार की ओधि ।[3]

साहित्यदर्पण का लक्षण :-

मनःक्षेपस्त्वपस्मारो ग्रहाद्यावेशनादिजः ।[4]

कुछ संचारीभावों के लक्षण कुलपति मिश्र के 'रस-रहस्य' के आधार पर भी किये हैं जो इस प्रकार हैं -

श्रम :- काज उताइल सौं करैं श्रमु कहै सब कोइ ।[5]

'रस-रहस्य' का लक्षण :-

बहुत उताइल काज तें श्रम जु सिथिलता संग ।[6]

कुँवरकुशल ने शिथिलता को छोड़ दिया है ।

चिन्ता :- करै ध्यान प्रिय वस्तु कौं चिंता रहै विचारि ।[7]

1- ल.ज.सिं0, ष.त., छं0 सं0 29

2- साहित्यदर्पण, पृ0 100

3- ल.ज.सिं0, ष.त., छं0 सं0 30

4- साहित्यदर्पण, पृ0 98

5- ल.ज.सिं0, ष.त. छं0 सं0 22

6- र.र., द्वि.वृ., छं0 सं0 21

7- ल.ज.सिं0, ष.त., छं0 सं0 24

`रस-रहस्य का लक्षण -

चिंता सों प्रिय बस्तु कों ध्यानैं करत बिहार ।[1]

कुछ संचारी भाव ऐसे हैं जिनके लक्षण कुँवरकुशल ने अत्यंत ही सरल भाषा में प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणात :

मोह- होनहार दुष कौं जहां चिंतन मोह निहारि ।[2]

भविष्य में आनेवाले दुख के सम्बंध में चिंतन करना मोह कहलाता है। अपनी वर्तमान सुखी अवस्था की विनष्टि के होने की संभावना हो तो उसके प्रति मोह का होना स्वाभाविक है। सुखोपरान्त दुख भोगने के लिए मनुष्य स्वयं को तैयार नहीं कर पाता।

विषाद:- कारय सिद्धि न ह्वै कहूं छिप्यौं विषाद विषाय ।[3]

कार्य में सफलता न मिलने पर मन में विषाद का भाव आ जाता है।

मति :- शास्त्र तत्व की बुद्धि सों मति मांनत मतिमांन ।[4]

शास्त्रों का अध्ययन करने पर मनुष्य की बौद्धिकता में विकास होता है उसे ही कुँवरकुशल ने `मति` की संज्ञा दी है।

1- र.र.,तृ.वृ.,छं0 सं0 22

2- ल.ज.सिं0,ष.त.छं0 सं0 24

3- वही- छन्द सं0 29

4- वही- छंद सं0 33

रस का लक्षण :- कुँवरकुशल ने रस का निम्नलिखित लक्षण किया है -

मिलि भाव अनुभाव मिलि भनि संचारी भूप ।
व्यंग्य कियों थिर भाव कह रस सो सुख को रूप ।।
कबितनि कैं सुनिबैं कुंअर नृत्य नयन निरषाय ।
उछिड है जडता आवरव आनंद रूप उपाय ।।
बिधि कौं सो तह सुष बरनि जहाँ मिलत सुधि जाय ।
मगन सुरसगति मैं सुमन रस नौ भाँति रचाय ।।[1]

कुँवरकुशल ने छंद की टीका में भरत के सूत्र तथा अभिनवगुप्त का उल्लेख किया है। विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से व्यक्त स्थायी भाव रस कहलाता है। यह सुख देनेवाला होता है। कविता के सुनने पर तथा नृत्य को नेत्रों द्वारा देखने पर जड़ता के आवरण नष्ट हो जाते हैं अर्थात् काव्य-श्रवण तथा नाट्य-दर्शन से सहृदय सांसारिक बंधनों से बन्धनमुक्त हो जाता है। ऐसा रस ब्रह्मानन्द सदृश सुखानुभूति देनेवाला होता है। जब सहृदय रस में मग्न हो जाता है तब अन्य समस्त विषयों की स्मृति जाती रहती है अर्थात् रागद्वेष की सीमा को छोड़कर अपनी वैयक्तिकता को भूलकर साम्यता के धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाता है। कुँवरकुशल ने यह वर्णन साहित्यदर्पण के आधार पर किया है।[2] मम्मट ने भी

1- ल.ज.सिं0, ष.त., छन्द सं0 39, 1, 2

2- विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम् ।।
सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः ।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ।।
साहित्य दर्पण, पृ0 46, 48, 49

विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त स्थायी भाव को रस माना है।[1]

हिंदी में चिन्तामणि ने भी विभाव आदि के संयोग से अभिव्यक्त स्थायी भाव को रस माना है।[2] कुलपति मिश्र और कुँवरकुशल के कथन में पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है।[3] सुरति मिश्र[4], सोमनाथ[5], भिखारीदास[6] तथा प्रतापसाहि[7] सभी

1- विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण:।
व्यक्त:सतैर्विभावाद्यै:स्थायी भावो रस:स्मृत:।। काव्यप्रकाश, पृ0 65

2- थाई सामाजिक हिय बसत वासना रूप।
व्यक्त विभावादिकनि मिलि रस ह्वै मिलत अनूप।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 28 से उद्धृत।

3- मिलि विभाव अनुभाव अरू संचारी सु अनूप।
व्यंग्य कियो थिर भाव जो, सोई रस सुखभूप।।
नृत्य कवित्त देखत सुनत, भये आवरन भंग।
आनन्द रूप प्रकाश है, चेतन ही रस अंग।।
जैसो सुख है ब्रह्म को, मिले जगत सुधि जाति।
सोई गति रस में मगन, भये सुरस नौ भांति।। र.र.तृ.वृ. छं0 सं0 34-36

4- जहँ पोषे स्थाई निको मिलि विभाव अनुभाव।
विभचारी तह रस प्रगट आनंद कथित प्रभाव।। काव्यसिद्धांत, छं0 सं0 44

5- जहँ विभाव अनुभाव अरू सहित सँचारी भाव।
व्यंग्य कियो थिर भाव इहि सो रस रूप बताव।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 323 से उद्धृत।

6- जहँ विभाव, अनुभाव थिर, चर भावन का ज्ञान।
एक ठौर ही पाइये, सो रस रूप प्रमान।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 27

7- मिलि विभाव अनुभाव मिलि मिलि संचारी भाव।
व्यंग्य होत थाई तहा रस कहि सो कविराव।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 360 से उद्धृत।

विभाव, अनुभाव, संचारी भावों के सम्मिश्रण से स्थायी भावकीअभिव्यक्ति ~~होकर~~ स्वीकार करते ~~रस कहलाता~~ हैं।

अत: सभी विद्वानों के मतों एवं लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो कुँवरकुशल का लक्षण भी परम्परागत है।

रसों की संख्या सभी विद्वानों द्वारा नौ ही बताई गई है। इसी भाँति कुँवरकुशल ने भी नौ प्रकार के रसों का ही निरूपण किया है -

सरस प्रथम सिंगार रस हास्य ~~हसनरू~~ करूना होत।
रौद्र वीर भय रस रहैं यौं बीभत्स उदोत।
अद्भुत जुतए आठ में रचि नाटक आराम।
सांत संजुत नौ रसनि कौं कुंअर कबित में कांम।।[1]

नव-रस वर्णन :-

श्रृंगार रस :- कुँवरकुशल के मतानुसार जहाँ पर दम्पति वर्णन मिलता है वहाँ पर श्रृंगार रस होता है। श्रृंगार रस ~~xxxxxxxxxxxxxx~~ संयोग और वियोग दो प्रकार का होता है। जहाँ पर पति पत्नी की क्रीड़ा का वर्णन होता है वहाँ पर संयोग श्रृंगार होता है तथा जहाँ पर मिलन में रूकावट होती है वहाँ पर वियोग श्रृंगार होता है -

दंपति इक वे देष्यियत सो रस हैं सिंगार।
यह संयोग वियोग अनि प्रगटैं दोइ प्रकार।।
पति पत्नी क्रीड़ादि पैं सो संयोग सुहाय।
अटक मिलन की है जहां विप्र जु वियोग बताय।।[2]

1- ल.ज.सिं0, षा.त., छं0 सं 3,4

2- वही- छन्द संख्या 5,6

विश्वनाथ ने कहा है कामदेव के उद्भेद(अंकुरित होने) को श्रृंग कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृंगार कहाता है।[1] हिंदी में केशवदास ने श्रृंगार रस उसे माना है जहाँ पर रति संयुक्त बुद्धि की अत्यंत चतुरता और काम(कला) के विचार का वर्णन रहता है।[2] मतिराम का कथन है कि जहाँ पर पति पत्नी की रति को वर्णन हो उसे श्रृंगार कहते हैं। जहाँ पर प्रसन्नचित्त नायक नायिका का मिलन होता है वह संयोग श्रृंगार कहलाता है। तथा जहाँ प्रियतमा तथा प्रिय का मिलन नहीं होता और बिना मिले आनंद नहीं आता, के वियोग श्रृंगार कहलाता है।[3] कुलपति मिश्र ने कहा है जहाँ पति पत्नी की रति प्रकट होती हो वहाँ पर श्रृंगार रस होता है। यह संयोग वियोग दो प्रकार का होता है जहाँ पर नायक नायिका के रमण का वर्णन है वह संयोग श्रृंगार है जहाँ पर मिलने में बाधा हो वहाँ वियोग श्रृंगार होता है।[4] सुरति मिश्र ने भी सुरति वर्णन, काम-वर्णन में श्रृंगार रस की उपस्थिति मानी है।[5] सोमनाथ के मतानुसार जहाँ पर

1- श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुक:।
उत्तम प्रकृतिप्रायो रस: श्रृंगार इष्यते ।। साहित्यदर्पण, पृ० 106

2- रति मति की अति चातुरी, रति पति-मंत्र बिचार।
ताही सों सब कहत हैं, कबि कोबिद श्रृंगार ।।
रसिकप्रिया-टीकाकार-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 5

3- जो बरनत तिय पुरुष को कबि कोबिद रतिभाव।
तासों रीझत हैं सुकबि सो सिंगार रस राव ।।
प्रमुदित नायक नायकाजिहिं मिलाप मैं होत।
सो संजोग सिंगार कहि बरनत सुमति उदोत ।।
प्यारी पीव मिलाप बिनु होत नहीं आनंद।
सो वियोग सिंगार कहि बरनत सब कबि-बृंद ।।
मतिराम-ग्रंथावली, सं0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ328, 35

4- पति तिय रति प्रगटै जहां सोइ रस श्रृंगार।
इक संयोग वियोग करि, ताकं द्वय प्रकार ।।
जहिं नायक-नायिका, रमें सु है संयोग।
जहां अटक है मिलन की ताही कहत वियोग ।। र.र.तृ.वृ. छं0सं0 39, 40

5- सूरत संतत जहँ रहै रति के पूरत अंग।
ताहि कहत सिंगार रस केवल मदन प्रसंग ।। काव्यसिद्धांत, छं0 सं0 47

दंपति मिलन का वर्णन होता है वहाँ पर संयोग श्रृंगार होता है और जहाँ पर प्रियतम के बिछुड़ने का वर्णन होता है वहाँ वियोग श्रृंगार होता है।[1] भिखारीदास के अनुसार जहाँ रति (प्रीति) की रचना तथा वचन का वर्णन हो वहाँ पर श्रृंगार रस होता है। प्रीति सुनकर चित्त द्रवित हो जाता है। संयोग श्रृंगार दो भाँति का होता है एक सामान्य श्रृंगार जिसमें केवल रूप चित्रण किया जाता है और द्वितीय में विहार वर्णन। वियोग श्रृंगार में दंपति का विरह वर्णन मिलता है, दोनों के हृदय में व्यथाजनक भाव उत्पन्न होते हैं।[2]

अतः हम देखते हैं कि कुँवरकुशल तथा कुलपति मिश्र के कथन में पर्याप्त साम्य है। इसी प्रकार अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ पर साम्यता दृष्टिगत होती है। इसका कारण यह है कि ब्रजभाषा पाठशाला में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं उनमें कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' भी था। कुँवरकुशल ने अपने ग्रंथ 'लखपति जस सिन्धु' का प्रणयन वहीं पर भुज में रहते हुए ही किया था। इस तरह उनके सामने मम्मट के 'काव्यप्रकाश' के साथ-साथ कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' भी था। इसलिए इन दोनों ग्रंथों में समानता देखने को मिलती है।

1- दंपति मिलि विधुर न जहाँ मनमथ कला प्रवीन।
ताहि संजोग सिंगार कहि बरनत सुकबि कुलीन॥
प्रीतम के बिछुरनि बिषै जो रस उपजतु जाइ।
बिप्रलंभ सिंगार को कहत सकल कविराइ॥

हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ० सत्यदेव चौधरी, पृ० 325 से उद्धृत।

2- (अ) उचित प्रीति रचना वचन, सो सिंगार रस जान।
सुनत प्रीति चय चित्त द्रवै, तब पूरन परिमान॥

भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 26

(आ) मिलि बिहरैं दंपति जहाँ सो संजोग सिंगारु।
भिन्न भिन्न छबि बरनिये सो सामान्य बिचारु॥
जहँ दंपति के मिलन बिनु होत बिथा बिस्तार।
उपजत अंतर भावबहु सो बियोग सृंगार॥

भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं. - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ. ४२,४३

कुँवरकुशल ने संयोग श्रृंगार के दो उदाहरण दिये हैं जिनमें से एक दृष्टव्य है -

सरद की पून्यौं राति कान्ह आये राधिका के मंदिर मुदित मनभाइ भइ बात हैं।
हाथ जोरि सौंरि सौंरि मीठी बातैं करैं चुंबन करत चित्त चाहि सरसात हैं।
मिलैं बिलैं रंग छिलैं अंग अंग मैं उमंग अंक भरैं आपस मैं क्यों हूं न अघात हैं।
पीय मुष देखि पीया परसन्न होत पीया मुष देषि पीय नैंन छकि
जात हैं।[1]

विययोग श्रृंगार :

कुँवरकुशल ने वियोग श्रृंगार के पाँच प्रकार बताये हैं -अनुराग, शाप, ईर्ष्या, प्रवास, वियोग -

प्रथम कह्यौ अनुराग पुनि साप ईर्ष्या संग।
गमन देश कौ बिरह गनि पांच वियोग प्रसंग।।[2]

मम्मट ने भी विरह के पाँच भेद ही माने हैं - अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या, प्रवास तथा शाप।[3] विश्वनाथ ने पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण नामक चार भेद बताये हैं।[4] हिन्दी में चिन्तामणि ~~मतिराम~~ ने ~~चार~~ विश्वनाथ की भाँति

~~1- मिलि बिहरैं दंपति जहाँ सो संजोग सिंगारु।~~
~~भिन्न भिन्न छबि बरनिये सो सामान्य विचारु।।~~
~~जहाँ दंपति के मिलन बिनु होत बिथा बिस्तार।~~
~~उपजत अंतरभाव बहु सो बियोग श्रृंगार।।~~
~~भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 42, 53~~

1- ल ज सिं0, षा त, छं0 सं0 8
2- वही - छन्द सं0 9
3- अपरस्तु अभिलाष-विरहेर्ष्या-प्रवास-शापहेतुक इति पंचविधः।
काव्यप्रकाश, पृ0 85
4- स च पूर्वराग मानप्रवास करुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्।
साहित्यदर्पण, पृ0 106

चार भेद बताये हैं। मतिराम ने पूर्वानुराग, मान,प्रवास नामक तीन भेद बताये हैं।[1] भिखारीदास ने 'रस-सारांश' में वियोग श्रृंगार के चार भेद बताये हैं।[2] तथा 'काव्यनिर्णय' में मम्मट का अनुकरण करते वियोग श्रृंगार के पाँच भेद बताये हैं।[3] इसके अतिरिक्त कुलपति मिश्र[4] तथा प्रतापसाहि[5] ने भी मम्मट की ~~भाँति~~ भाँति पाँच भेद गिनाये हैं।

मम्मट द्वारा निरूपित क्रम में कुँवरकुशल ने अंतर कर दिया है। मम्मट ने अभिलाषा,विरह,ईर्ष्या,प्रवास तथा शाप बताये हैं, कुँवरकुशल ने अनुराग,शाप, ईर्ष्या गमन देश(प्रवास)तथा विरह गिनाये हैं। परंतु यह क्रम उचित नहीं है। यों

1- कहि पूरब अनुराग अरु,मान प्रवास बिचारि।
रस सिंगार वियोग के तीन भेद निरधारि।।
मतिराम-ग्रंथावली-सं0पं0कृष्णबिहारी मिश्र,पृ0 335

2- है वियोग बिधि चार को पहिले मानु बिचारि।
पूरबराग प्रवास पुनि करुना उर मैं धारि।।
भिखारीदास(प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ0 53

3- भिखारीदास(द्वितीय खण्ड)सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ0 29-31

4- अब बियोग कहि पांच विधि तहूँ परब अनुराग।
विरह ईर्षा शाप पुनि,गमन विदेश विभाव।।
र.र.,तृ.वृ.,छन्द सं0 43

5- पूर्वराग पुनि मान कहि, बहुरि प्रवास बखानि।
उत्कण्ठा पुनि श्राप कहि पांच भांति पहचानि।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी,पृ0 36से उद्धृत

क्रम परिवर्तन कुलपति मिश्र तथा प्रतापसाहि ने भी किया है। प्रतापसाहि ने उत्कण्ठा (अभिलाषा) को चौथा स्थान दिया है वह प्रथम होना चाहिए। कुँवरकुशल का अनुराग ही मम्मट द्वारा बताया गया अभिलाषा प्रकार है। अनुराग अर्थात् पूर्वानुराग। इसके पश्चात् विरह आना चाहिए तत्पश्चात् ईर्ष्या, प्रवास तथा शाप। परंतु कुँवरकुशल ने पहले ही शाप, ईर्ष्या, गमन देश तथा विरह कहा है। गमन देश अर्थात् प्रवास होने पर स्वत: ही विरह हो जाता है, अलग से विरह नामक भेद बताना उचित नहीं। दूसरे इस प्रकार का विरह पूर्वानुराग के बाद लज्जा तथा गुरुजनों की परतंत्रता आदि के कारण होने वाला विरह होता है। इसलिए अंत में विरह बताना उचित नहीं। कुँवरकुशल ने वियोग श्रृंगार के पाँचों भेदों के उदाहरण दिये हैं जिनमें से अनुराग का उदाहरण द्रष्टव्य है -

नैननि मूँदि रहौं जबहीं तबहीं हरि हेत तैं हीय मैं आवैं।
और नहीं सुधि या तन मैं अलि के गन औ मन नाँहिं सुहावैं।।
फेरि कहूं वे मिलैं मनमोहन मौं कहि आपुनौ भाव बतावैं।।
साँची सहेली जेहूं होय मेरी तौ कान्ह सुजान कौं आँनि मिलावैं।।[1]

कुँवरकुशल ने वियोग श्रृंगार तथा करुण रस का भेद बताते हुए कहा है कि-

आसा मिलिबे की उहाँ बरनि बियोग बताय।
कहियें मिलिबौ ना कहूं करुनां ताहि कहाय।।[2]

1- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 20

2- वही- छन्द सं0 25

विश्वनाथ के मतानुसार भी करुण रस में शोक स्थायी होता है और वियोग में पुन: मिलने की संभावना बनी रहने के कारण रति स्थायी होती है।[1]

हास्य रस :

कुँवरकुशल के मतानुसार - जहाँ पर योग्य को भी अयोग्य बना दिया जाता है, समस्त कार्य उल्टे दिखाई देते हैं, दृष्टि, रूप और वक्रगति से हास्य रस उत्पन्न होता है, मंद, मध्य और उच्च स्वर में हंसना भौंहों में हंसना, अनुभाव हैं, हर्ष, चपलता, उद्वेग इसके संचारी भाव हैं। कवित्त और नृत्य में 'हास' के व्यंग्य (स्थायीभाव) होने पर हास्य रस अभिव्यक्त होता है। इससे सहृदय सुख में मग्न हो जाते हैं -

> ह्वै अजोग कौ जोग कहुं जह लष्षि उलटे काज।
> चितवनि रूप बुरैं चलनि सो है हास्य समाज।।
> मंद मध्य स्वर उच्च मैं भौं हसिबौ अनुभाव।।
> हरष चपल उद्वेग हिय भनि संचारी भाव।।
> करित नृत्य इनि तैं कहुं व्यंग्य हास्य बरषाय।।
> सहृदय सुख मैं मगन सहि रस सो हास्य रचाय।।[2]

विश्वनाथ के मतानुसार वाणी आदि के विकारों को देखकर चित्त का विकसित होना 'हास' कहाता है।[3] अन्यत्र भी कहा है - विकृत आकार, वाणी, वेष

1- शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रस: ।
विप्रलम्भे रति: स्थायी पुन: संभोग हेतुक: ।। साहित्यदर्पण, पृ0 117

2- ल.ज.सिं0, ष.त., छं0 सं0 20,22

3- वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते ।।
साहित्यदर्पण, पृ0 105

तथा चेष्टा आदि के नाट्य से हास्य रस का आविर्भाव होता है।[1] केशवदास ने कहा है नेत्रों(चेष्टाओं) और वचनों को कुछ का कुछ करने से जहाँ मन में प्रसन्नता का उदय हो वहाँ हास्य रस होता है।[2] चिन्तामणि ने हास्य रस विकृत आकृति वचन और वेश से उत्पन्न होना माना है।[3] कुलपति मिश्र ने कहा है -

जहँ अजोग को जोग पुनि उलटे लखिये काज।
बुरो रूप चितवनि कलनि हास्य विभाव समाज ।।
मंद मध्य अरु उंच स्वर हसिबो है अनुभाव।
हरख उद्वेग रू चपलता ए संचारी भाव ।।
इनतें नृत्य कवित्त में हास व्यंग जहां होइ।
कवि सहृदय को सुखद है हास्य रस कहैं सोइ ।।[4]

देव के अनुसार भाषा(बोलना) भूषण,वेश जहाँ पर उल्टे धारण किये जाते हों वहाँ हास्य रस होता है।[5] सुरति मिश्र के अनुसार विदूषक तथा देखनेवाले को आलम्बन उद्दीपन मानते हैं नेत्रों का संकुचित होना अनुभाव,हर्ष इसका संचारीभाव है।[6] भिखारीदास ने 'रस सारांश' में कहा है कि हास्य रस का स्थायी

1- विकृताकार वाग्वेषचेष्टादे: कुहकाद्भवेत्। वही,पृ0 115

2- नयन नयन कछु करत जब, मन को मोद उदोत।
चतुर चित्त पहिचानियै, तहाँ हास्यरस होत ।।
रसिकप्रिया-सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ0 255

3- वचनादिक वैकृत निरखि होत जु चित्त बिकास।
हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी,पृ0 294से उद्धृत।

4- र.र.,वृ.वृ.छं0 सं0 56-58

5- भाषा,भूषण, भेष, जहँ, उलटेइ करि मूल।
शब्द-रसायन-सं0 डॉ0 जानकीनाथसिंह 'मनोज',पृ0 90

6- हास विदूषक इंगित जु आलंबन उद्दीप।
दृग संकोच अनुभाव मुद। आदि संचारि समीप ।।
काव्यसिद्धांत, छन्द सं0 65

भाव हास है। व्यंग्य तथा भ्रमपूर्ण वचन इसके विभाव हैं, विचित्र स्वांग तथा तर्क-वार्ता इसके अनुभाव हैं तथा हास के द्वारा मनोजन्य विविध अनुभूतियाँ इसके सात्विक भाव हैं।[1]

अत: हम देखते हैं कि हमारे आलोच्य आचार्य कुँवरकुशल ने अपना कथन कुलपति मिश्र के 'रस-रहस्य' के आधार पर प्रस्तुत किया है। कुँवरकुशल ने इसके सुंदर उदाहरण दिये हैं जिनमें से एक उदाहरण प्रस्तुत है -

'दूलही मैंसि कौं व्याह मंड्यौ तहाँ दूलह चूहा महासुष पावैं ।।
ऊँट बराती मिले हैं उमंग तैं गान की तान गधेरन गावैं।।
कूकर नांच करैं मन सांच तैं मोद तैं मेंडक ताव बजावैं ।।
होय षुस्याल बडे रसियें रस भीजि कैं, बंदर दांत दिषावैं ।।[2]

करुण रस :

कुँवरकुशल का कथन है कि जहाँ नृत्य और कवित्त में 'शोक' स्थायी भाव व्यंजित होता है उसे सहृदय कवि करुण रस मानते हैं, दुखी मित्र देखकर मन दुखित होता है, शाप ग्रस्त, मृतक, अंध बंध, दरिद्रता देखकर शोक उत्पन्न होता है। कम्प, रुदन, रोमांच इसके अनुभाव हैं, ग्लानि, मूर्छा, दीनता इसके संचारी भाव हैं -

---

1- व्यंगि बचन भ्रम आदि दै, बहु विभाव है जासु ।
ख्याल स्वांग अनुभव तरक, हँसि तोथाइ हासु ।।
अनुभव सब इन रसिन को, सात्विक भावै मित्त ।
होइ जु वै ही भाँति पुनि, सोऊ समुझो चित्त ।।
भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद, पृ0 65

2- ल.ज.सिं0, षा.त.छन्द सं0 24

मित्र दुषी लषा दुषित मन साप मृतक कों सोधि ।।
अंध बंध दारिद जहां प्रगटै शोक प्रबोधि ।।
कंप रुदन उठि रोम कहुं यह जानौ अनुभाव ।।
ग्लानि ,मूरछा दैन्य गनि ए संचारी आव ।।
कुंअर जु नृत्य कबित्त जह व्यंगय सोक बलवान ।।
सहृदय कबि जाकों सदा गिनत करुन रस ग्यांन ।। [1]

साहित्यदर्पणकार के मतानुसार इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुणारस आविर्भूत होता है। [2] केशवदास के अनुसार जहाँ प्रिय के लिए अप्रिय कार्य होता है वहाँ करुण रस होता है। [3] कुलपति मिश्र का कथन है कि करुण रस का स्थायी भाव शोक है। दुःखी मित्र, शापग्रस्त बन्धु अथवा मृतक व्यक्ति इस रस के विभाव हैं। रूदन,कम्प,रोमांच आदि अनुभाव हैं तथा ग्लानि,दीनता,मूर्छा आदि संचारी भाव हैं। [4] देव के अनुसार इष्ट का अनिष्ट सुनकर मन में शोक उत्पन्न होता है। [5] भिखारीदासनेरस सारांश में कहा है कि करुण रस का स्थायी भाव शोक है। दुःख और बिपत्ति में पड़ा हुआ स्वजन आलम्बन विभाव है, भूमि में

1- वही-छन्दसं0 25-27

2- इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्। साहित्यदर्पण,पृ0 116

3- प्रिय के बिप्रिय करन तें, आनि करुनरस होत।
रसिकप्रिया-सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ0 264

4- दुखी देखियैं मित्र पुनि मृतक शाप अरु बंध।
इनतें उपजत शोक लखि दारिद जुत अरु अंध ।।
रूदन कंप अरु रोम तनए कहियैं अनुभाव।
ग्लानि दीनता मूरछा ए संचारी भाव ।।
समुजत नृत्य कबित्त में शोक व्यंग्य जह होइ।
कबि सहृदय सब रसनि मैं करुण बखानैं सोइ ।।
र.र.तृ.वृ.छन्द सं0 61-63

5- बिनसे, इठे अनीठ सुनि मन में उपजत सोग।
शब्द-रसायन-सं0 डॉ0 जानकीनाथ सिंह मनोज,पृ0 92

लोटना, विलाप और नि:श्वास इसके अनुभाव हैं।[1]

अत: हम देखते हैं कि यहाँ पर भी कुँवरकुशल ने करुण रस के निरूपण में कुलपति मिश्र का अनुकरण किया है। इसका उदाहरण इस प्रकार है -

फीक बजै समसेरनि की जहां लंबीये रोर परी रन मैं।
तात औ बंधु चले सब छोडि कै छाड़ लगे हैं घने तन मैं।।
छाती फटै वह देषत ही सुनि काननि मोह बडे मन मैं।
होत उदास मरैं बह सासनि हास विलास भुलैं छिनमैं।।[2]

उपर्युक्त उदाहरण पर कुलपति मिश्र के उदाहरण का प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है।[3]

रौद्र रस :

कुँवरकुशल का कहना है कि काव्य नृत्य में 'क्रोध' स्थायी भाव व्यंजित होकर रौद्र रस कहलाता है। शस्त्र से सुसज्जित रण में शत्रु, के गर्वित वचन सुनकर क्रोध उद्दीप्त होता है। ये ही इसके विभाव हैं। होठों का फड़कना, लाल नेत्र,

---

1- हित दु:ख विपति विभाव, करुना बरनै लोक।
भूमि पतन विलपन स्वसन, अनुभव थाइ शोक।।
भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 65

2- ल.ज.सिं0, षा.त.छन्द सं0 28

3- रौरि परी रण मैं भट मार मरे बहु तें कछु कै भजि आए।
तेऊ पुकार तहां सु तहा पित वीर हमें कहू छोडि सिधाए।।
देखत छाती फटै सबकी उपजैं जिय को सुनि मोह महाए।
ह्वै ह्वै उदास तजैं पिय बास सुहास विलास सबै बिसराए।।
र.र.,तृ.वृ.,छन्द सं0 64

वक्र भृकुटि इसके अनुभाव है। विकलता, चपलता, गर्व इसके संचारी भाव हैं -

आयुध रिपु रन लषात औ गरब बचन के घाउ।
क्रोध दिये असैं किये भनियैं यहैं बिभाउ ।।
अधर फरक दृग लाल औ भृकुटि वक्र अनुभाउ ।।
विकल चपलता गर्व बहु भनि संचारी भाउ ।।
कबित नृत्य में क्रोध कौं व्यंग्य जु देहु बताय ।।
कवि सहृदय याकौं कहैं दुरस रौद्र रस दाय ।। [1]

विश्वनाथ के अनुसार 'रौद्र रस में क्रोध स्थायी भाव होता है। इसका वर्ण लाल और देवता रुद्र है। इसमें 'आलम्बन' शत्रु तथा उद्दीपन उसकी चेष्टायें होती हैं। भृकुटि भंग, ओठ चबाना, ताल ठोंकना, उग्रता, आवेग इत्यादि अनुभाव हैं, आक्षेप करना, क्रूरता से देखना, मोह और अमर्ष इसके व्यभिचारी होते हैं। [2] केशवदास का मत है कि रौद्र रस, क्रोधमय होता है इसमें प्रचण्ड रूप (उग्रता) से सम्पन्न व्यक्ति होता है। [3] चिन्तामणि के मतानुसार शत्रु द्वारा किये गये अपराध से उत्पन्न चित्त में प्रज्वलित क्रोध ही रौद्र रस का स्थायी भाव होता है। [4] कुलपति मिश्र ने कहा है रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। क्रोध की उत्पत्ति रण में रिपु को देखकर होती है। गर्वोक्ति, शस्त्र निकालना, कुटिल भृकुटि, अरुण दृग, अधरों का

1- ल.ज.सिं0, षा.त., छन्द सं0 29-31

2- साहित्यदर्पण, पृ0 117

3- होहि रौद्र रस क्रोधमय, विग्रह उग्र सरीर।
रसिकप्रिया-सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 266

4- अरि विरचित अपराध तें चित्त प्रजलन क्रोध।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य- डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 294 से उद्धृत।

फड़कना आदि इसके अनुभाव हैं और गर्व, चपलता, विकलता इसके संचारी भाव हैं।[1] देव भी शत्रु द्वारा किये गये कार्य से उत्पन्न क्रोध द्वारा रौद्र रस की उत्पत्ति मानते हैं।[2] सुरति मिश्र के विचारानुसार शत्रु आदि इसके आलम्बन, चरित्र (नायक) उद्दीपन, भौंहों की वक्रता अनुभाव तथा उग्रता आदि संचारी भाव हैं।[3] भिखारीदास की मान्यता है कि रौद्र रस का स्थायी भाव असह्य क्रोध है, असह्य शत्रु इसका विभाव, अरुणता और अधर दंश इसके अनुभाव हैं।[4]

अत: क हम कह सकते हैं कि यहाँ पर भी कुँवरकुशल ने कुलपति मिश्र की पर्याप्त मदद ग्रहण की है। उदाहरणत: -

आसापुरा कौ हुक्म भये, हौं चढ्यौं लषाधीर भुआल्ल पै चूकूं।
धाक मचाऊं धरा में धमंक तैं पर्वत घोरे के पाइनि चूकूं।।
तेग बजाऊं उडाऊं अरीनि कौं बांधि कैं छांती मैं ऊरूं।।
बांननि मुंडनि षंड करौं अरु लोहू की धार नदी नद पूरूं।।[5]

1- गर्व वचनरिपु रण लखत और कढ़ै हथियार।
इनतें उपजत क्रोध जग ए बिभाव सिरदार।
भृकुटि कुटिल अरु अरुन दृग अधर फरक अनुभाव।
गरब चपलता बिकलता ए संचारी भाव।
इनतें नृत्यु कबित्त में क्रोध व्यंग्य जहं होइ।
कवि सहृदै सब कहत है रौद्र रस वह सोइ।। र.र., तृ.वृ.छं0 सं0 65-67

2- बिधि असाध अपराध करि, उपजावत जिय क्रोध।
होत क्रोध बढ़ि रौद्र रस, जहँ कहु बाद बिरोध।।
शब्द-रसायन, सं0 डॉ0 जानकीनाथसिंह मनोज पृ0 95

3- आलंबन मधि रूद्र अरि चरित उद्दीपन धारि।
भ्रू भंग हर अनुभाव है उग्रतादि संचारि।। काव्यसिद्धांत, छन्द सं0 72

4- असहन बैर विभाव जहँ, थाइ कोप समुद्र।
अरुन अधरन दरन, अनुभव ये रस रूद्र।।
भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 67

5- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 32

वीर रस :

कुँवरकुशल के अनुसार वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। इसके चार भेद हैं - युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, धर्मवीर। शत्रु का बल, उग्रता इसके विभाव हैं, अंगों का फूलना, मुख की रंगत अर्थात् मुख का लाल होना और वीरों का संग इसके अनुभाव हैं, असूया, उग्रता, गर्व इसके संचारी भाव हैं।[1] कुँवरकुशल और कुलपति मिश्र के कथन में पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है।[2]

साहित्यदर्पणकार के अनुसार उत्तम पात्र में आश्रित वीर रस होता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है। इसमें जीतने योग्य आलम्बन विभाव होते हैं, उनकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं, युद्ध के सहायक का अन्वेषणादि अनुभाव, धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांचआदि इसके संचारी भाव हैं। दानवीर, धर्मवीर दयावीर तथा युद्धवीर नामक चार प्रकार का होता है।[3] चिन्तामणि का कथन है कि वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। लोकोत्तर कार्य में स्थिर प्रयत्न को उत्साह कहते हैं।[4] देव ने वीर रस के तीन प्रकार मानते हुए कहते हैं कि युद्ध क्षेत्र में शत्रु को देखकर युद्ध की लालसा, जाग्रत होती है। अपने समक्ष दुःखी को देखकर दया का भाव उदित होता है द्वार पर आये भिक्षुक को देखकर दान देने की प्रवृत्ति जागृत होती है। इसका स्थायी भाव उत्साह है।[5] सुरति मिश्र का कथन है कि

---

1 ल॰ ज॰ सिं॰ प्र॰ त॰, छं॰ सं॰ 33-39

2- र.र.तृ.वृ. छन्द सं0 69-72

3- साहित्यदर्पण, पृ0 117-18

4- जो लोकोत्तर काज में थिर प्रजंत उत्साह।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 295से उद्धृत।

5- रन बैरी, सन्मुख दुखी, भिक्षुक आये द्वार।
युद्ध, दया अरु दान हित, होत उछाह उदार।
शब्द-रसायन-सं0 डॉ0 जानकीनाथ सिंह मनोज पृ0 95

जीतने योग्य पात्र आलम्बन, जीतनेवाला उद्दीपन, उद्दीपन की चेष्टायें अनुभाव तथा मति धृति संचारी भाव हैं।[1] भिखारीदास कहते हैं- वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। इसके विभाव चार प्रकार के पुरुष हैं - सत्य, दया, रण और दान में वीर। प्रतिज्ञा और शूरता इसके अनुभाव हैं।[2]

कुँवरकुशल रौद्र रस और वीर रस का अन्तर बताते हुए कहते हैं कि वीर रस में समतापूर्ण उत्साह रहता है परन्तु जहाँ क्रोध के कारण सम असम की सुधि जाती है वह रौद्र रस है -

है समता की सुधि जहाँ जुद्ध उत्साह सुजांनि।
सुधि भूलै सम असम की मनजु क्रोध वह मांनि।।[3]

साहित्यदर्पणकार भी रौद्र रस और वीर रस का अंतर बताते हुए कहते हैं कि नेत्र और मुख का क्रोध के कारण लाल हो जाना इसी रस (रौद्र रस) में होता है, वीर रस में नहीं, क्योंकि वहाँ उत्साह ही स्थायी होता है।[4]

1- वीरालंब जु जीतिवे। जीत चरित उद्दीप।।
उद्दीप अनुभावें सुमति धृति संचारि समीप।। काव्य सिद्धांत, छन्द सं0 74

2- जानो वीर विभाव पै, सत्य दया रन दानु।
अनुभव टेक और सूरता, उत्सह थाइ जानु।।
बरनें चारि विभाव के, चारयौ नायक वीर।
भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 66

3- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 37

4- रक्तास्यनेत्रता चात्र भेदिनी युद्धवीरत:।

साहित्यदर्पण, पृ0 117

हिन्दी में कुलपति मिश्र[3] और सोमनाथ[4] ने भी रौद्र रस और वीर रस का अंतर स्पष्ट किया है। कुँवरकुशल ने कुलपति मिश्र के कथन को उचित समझ कर ग्रहण किया है क्योंकि जितना अन्तर कुलपति मिश्र के कथन से स्पष्ट होता है उतना साहित्य दर्पणकार के कथन से नहीं। अत: यहाँ पर कुँवरकुशल की अन्धानुकरण की प्रवृत्ति का न होना स्पष्ट प्रतीत होता है।

कुँवरकुशल ने वीर रस के चारों भेदों के उदाहरण दिये हैं जिनमें से युद्धवीर का उदाहरण प्रस्तुत है -

घाक तैं षंड करौं ब्रह्मंड औ मस्त विपच्छि के मूंड मुडाऊं ।।
जागती तेज के जोर तैं बेगि ही मांनी के मांन की पैज छुडाऊं।।
राम को माइ लष्मन हौं दृग बंके बिलोके तै बांधि बुझाऊं ।।
कुंभकरन्न तो बूतौ कहा जूरि जंग में लंकपती कौ उडाऊं ।। [1]

भयानक रस :

कुँवरकुशल ने भयानक रस का लक्षण देते हुए कहा है - इसका स्थायी भाव भय है। सूना घर बाघ, व्याल, बनवास तथा बलवान व्यक्ति जिससे भय लगता हो ये सब विभाव हैं, रोमांच, पसीना और कम्प इसके अनुभाव हैं, मोह, दीनता, मूर्छा इसके संचारी भाव हैं -

सूनो गृह अपराध सौं बाघ व्याल बनवास ।।
जोराबर तै गुन हतै भय विभाव उद्भास ।।
अनुभावनि कौ अंग रोम पसीनौ कंप रचि ।।
सुनि संचारी संग मोह दीनता मूरछा ।।
नांच कवित मैं इनिहि तैं परगट भय परबीन ।।
मन सहृदय कौ मगन ह्वै भय तैं कोउ मीन ।। [2]

1- ल.न.सिं0,षा.त.,छं0 सं0 38

2- वही- छन्द सं0 45-47

कुँवरकुशल ने अपना लक्षण कुलपति मिश्र से प्रभावित होकर किया है।[1] साहित्यदर्पणकार ने भी भय उत्पन्न करनेवाले कारणों को आलम्बन तथा उसकी चेष्टायें उद्दीपन मानी हैं। विवर्णता, गद्गद् भाषण, प्रलय (मूर्छा), स्वेद, रोमांच, कम्प, इधर-उधर ताकना अनुभाव, जुगुप्सा, आवेग मोह त्रास, ग्लानि दीनता, शंका, अपस्मार, सम्भ्रम और मृत्यु संचारी भाव हैं।[2] केशवदास भी कहते हैं जहाँ देखकर सुनकर भय उत्पन्न हो वहाँ भयानक रस होता है।[3] चिन्तामणि के अनुसार भयानक शक्ति से उत्पन्न चित्त की विकलता ही भय है, ऐसा भय भयानक रस का स्थायी भाव है।[4] देव के अनुसार शत्रुओं को देखें अथवा उनके बारे में सुनें, उनके अपराध और मन अनीति को देखे सुने, कहीं पर शत्रु मिले, ग्रह, भूत आदि को स्मरण करके भय उत्पन्न होता है, भयानक रस में भय स्थायी है, नेत्रों में जल का आना, कम्प, चित्त की व्याकुलता, चिन्ता, चपलता, विवर्णता तथा स्वरभंग इसके अनुभाव तथा संचारी भाव हैं।[5] सुरति मिश्र का विचार है कि भय का कारण

1- र.र.दृ.वृ. छन्द सं0 78-80

2- साहित्यदर्पण, पृ0 119-20

3- होइ भयानक रस सदा, केसव स्याम सरीर।
जाको देखत सुनतहीं, उपजि परति भयभीर।।
रसिकप्रिया- सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 270

4- रौद्र शक्ति भव चित की विकलता भय जानि।
हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य -डॉ0 सत्यदेव चौधरी- पृ0 295 से उद्धृत।

5- घोर सत्रु देखे सुने, करि अपराध, अनीति,
मिले सत्रु, भूतादि, ग्रह, सुमिरे-उपजत भीति।
भीति बढ़े रस-भयानक, दृग-जल बेपथु-अंग,
चकित-चित, चिंता, चपल, विवरनता, स्वर भंग।।
शब्द-रसायन-सं0 डॉ0 जानकीनाथ सिंह मनोज पृ0 97

आलम्बन है, जिसमें भय उत्पन्न हो वह उद्दीपन है, स्वर भंग अनुभाव तथा मूर्छा संचारि भाव हैं।[1] भिखारीदास की मान्यता है कि भय भयानक रस का स्थायी भाव है, भयानक वस्तु विभाव, भय के कारण सूखना अनुभाव है।[2]

अत: हम देखते हैं कि विश्वनाथ ने जितने अनुभाव और संचारी भावों का वर्णन किया है उतने विस्तृत रूप से हिंदी में किसी आचार्य ने नहीं किया है। कुँवरकुशल ने तीन-तीन अनुभाव और संचारी भावों का वर्णन करके छोड़ दिया है। कुँवरकुशल द्वारा दिया गया भयानक रस का उदाहरण -

देशल नंद लषापति जू बर तैं ए विचार धरयौ मन मैं।
मारि विपच्छि कौ लूटि त्यौं लच्छि कौं औं कह्यौ अपने मन मैं।
सो सुनि कैं अरि भागि चले भयभीत भये अपने तन मैं।
सुरति सिंह लषो तिहिं ठाव सुधि भूलै फिरैं भय तैं बन मैं।।[3]

वीभत्स रस :

कुँवरकुशल ने वीभत्स रस का लक्षण देते हुए कहा है ग्लानि(जुगुप्सा) इस रस का स्थायी भाव है। अरुचिकर वस्तुओं के दर्शन, स्मरण तथा श्रवण इसके विभाव हैं। रोमांच, कम्प, निंदा अनुभाव तथा दु:ख असूया संचारी भाव हैं -

---

1- भय आलंबन हेतु भय कृत उद्दीपन धारि।
अनुभावैं सुर भंग हर मूरछादि संचारि।। काव्यसिद्धांत, छं0 सं0 76

2- बात विभाव भयावनी, भौ है थाइ भाव।
सुखि जैबो अनुभाव तें, सुरस भयानक ठाव।।
भिखारीदास(प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 68

3- ल.ज.सिं0,षा.त.छन्द सं0 48

अरुच वस्तु लषि स्मर असुध सुमिरन सुनत विभाव ।।
रोम कंप निंदा रहै ए अनुभाव उपाव ।।
दु:ख असूया दोउ सह संचारी कौ साथ ।।
नृत्य कवित्त मैं ग्लानि की बीभछ घालैं बाथ ।।[1]

बीभत्स रस का लक्षण भी कुलपति मिश्र के द्वारा दिये गये लक्षण से पर्याप्त समानता लिए हुए है।[2] साहित्यदर्पणकार के अनुसार जुगुप्सा वीभत्स रस का स्थायीभाव है। दुर्गन्धयुक्त मांस, रुधिर, चर्बी आदि अनुभाव, इनमें कीड़े पड़ जाना उद्दीपन है। थूकना, मुँह फेरना, आँख मींचना अनुभाव तथा मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि और मरण इसके संचारीभाव हैं।[3] केशवदास के मतानुसार घृणात्मक वस्तुओं को देखकर मन उदास हो जाता है।[4] चिन्तामणि का कथन पूर्णतया साहित्यदर्पण पर आधारित ही है।[5] देव भी घिनौनी वस्तु के देखने सुनने से घृणा का उत्पन्न होना वीभत्स रस के अंतर्गत मानते हैं।[6] सूरति मिश्र का भी यही

1- ल.ज.सिं0, षा.त.छन्द सं0 49, 50

2- र.र., तृ.वृ.छन्द सं0 82-84

3- साहित्य दर्पण, पृ0 120

4- निंदामय वीभत्सरस, नील बरन बपु तास ।
केशव देखत सुनत हीं, तन मन होइ उदास ।।
रसिकप्रिया-सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 272

5- हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 295 से उद्धृत ।

6- बस्तु घिनौनी देखि सुनि, घिन उपजै जिय माँहि ।
घिन बाढ़ै वीभत्स रस, चित्त की रुचि मिटि जाँहि ।
शब्द-रसायन-सं0 डॉ0 जानकीनाथ सिंह मनोज पृ0 97

विचार है।[1] भिखारीदास ने 'रस-सारांश' में वीभत्स रस के सम्बंध में कहा है कि वीभत्स रस का स्थायी भाव घृणा है। घृणित और खराब वस्तु विभाव तथा निंदा करते हुए मुख मूँदना अनुभाव हैं।[2]

अत: कुँवरकुशल का कथन भी परम्परागत ही है।

उदाहरणत: -

चांम उष्षेरि उष्षेरि कें दंतनि चाहि कें फेफरि कौं चटकावैं ।।
पीडी और पीठि कै आसहिं पास कौं ग्रास कै मांसहि कौं भटकावैं ।।
रंग पिशाच कटंकीन हाडनि गाढनि गाढनि तैं गटकावैं ।।
पेट भरे तैं डकारैं करैं फिरि लोहू घटैं घट लैं घटकावैं ।।[3]

अद्भुत रस :

कुँवरकुशल के विचारानुसार- इसका स्थायी भाव अचरज (आश्चर्य) है। अनदेखी, अनसुनी, बात देखने सुनने में आये वहाँ अद्भुत रस होता है। रोमांच, हर्ष, कम्प इसके अनुभाव हैं। मोह और शंका इसके संचारी भाव हैं -

---

1- आलंबन वीभत्स में।।विगंध उद्दीप क्रमादि।
ठीवनादि अनुभाव हैं संचारी मोहादि ।।
काव्यसिद्धांत, छन्द सं0 78

2- थाइ घिनै विभाव जहँ, घिन मैं वस्तु अस्वच्छ।
बिरचि निंद मुख मूंदिबो, अनुभव रस बिभत्स ।।
भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 68

3- ल.ज.सिं0, ष्ष.त.छन्द सं0 52

कबहु न देख्यो देखि औ सुन्यों न बचन विभाव ।।
रोम हर्ष अरु कंप बपु ए सुनि जे अनुभाव ।।
सही हरष संचारियै मोह रु संका भानि ।।
अचरिज व्यंग्य उपावही रस अद्भुत सरसानि ।। [1]

कुँवरकुशल ने अद्भुत रस का लक्षण भी कुलपति मिश्र के आधार पर दिया है ।[2] साहित्यदर्पणकार ने भी कहा है अलौकिक वस्तु इसका आलम्बन और उसके गुणों का वर्णन उद्दीपन होता है । स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्गद् स्वर, सम्भ्रम और नेत्र विकास इसके अनुभाव, वितर्क, आवेग, भ्रांति, हर्ष आदि इसके संचारी भाव हैं ।[3] केशवदास भी अद्भुत रस का विषय आश्चर्यजनक वस्तुओं का देखना सुनना ही मानते हैं।[4]

1- ल.ज.सिं0, ष.त.छं0 सं0 53, 54

2- जहं अनहोने देखियै वचन रचन अरु रूप ।
अद्भुत रस के जानियें ए विभाव सु अनूप ।।
बचन कंप अरु रोमतन ए कहियें अनुभाव ।
हरख संकचित मोह पुनि ए संचारी भाव ।।
र.र.तृ.वृ.छन्द सं0 86,87

3- + + वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम् ।
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः ।।
स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांच गद्गद्स्वर संभ्रमाः ।
तथा नेत्रविकासाद्याः अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।।
वितर्कावेग संभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः । साहित्यदर्पण,पृ0 120,21

4- होइ अचम्भो देखि सुनि, सो अद्भुत रस जानि ।
रसिकप्रिया-सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 274

चिन्तामणि[1] देव[2],सुरति मिश्र[3] भी इसी कथन का अनुमोदन करते हैं। भिखारीदास का कथन है कि अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। सुन्दर चित्र आदि नवीन वस्तुओं की प्राप्ति अथवा इनका दर्शन इसके विभाव हैं, और स्तम्भ आदि इसके अनुभाव हैं।[4] कुँवरकुशल द्वारा दिया गया अद्भुत रस का उदाहरण -

मारे हैं मल्ल मतंग पछारि कैं और सुभट्ट तैं आनि लर्‌यौ ।।
भाग जसोमति के भुव मैं कोउ पूरब सुकृत आनि फर्‌यौ ।।
यौं असुरांनी कहैं मिलि कैं बिधि असो बनाउ कहां तैं धर्‌यौ ।।
छास के पीवनहारहिं छोकरैं कंस कौ बंस उछेद कर्‌यौ ।।[5]

1- निरखि अलौकिक वस्तु जो होत चित-विस्तार।
हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य- डॉ0 सत्यदेव चौधरी,पृ0 295 से उद्धृत।

2- आछचरज देखे सुने, बिस्मय बाढ़त चित्त,
अद्भुत रस बिस्मय बढ़ै, अचल, सचकित निमित्त।
शब्द-रसायन - सं0 डॉ0 जानकीनाथ सिंह मनोज पृ0 99

3- चित्र अद्भुत अलोकि कैं॥वस्तु दीप गुन धारि।
दृग विकास अनुभाव हुं॥चित्र कादि संचारि ।।
काव्यसिद्धांत-छन्द सं0 80

4- नई बात को पाइबो, अति बिभाव छवि चित्र।
अद्भुत अनुभव थाकिबो, बिस्मै थाइ मित्र ।।
भिखारीदास(प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 66

5- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 59

शान्त रस :

कुँवरकुशल के अनुसार- इस रस का तत्त्व ज्ञान से उपजित निर्वेद ही स्थायी भाव है। सिद्ध पुरुषों का साथ, तपोवन, असार संसार की कथाएँ, श्मशान आदि इसके विभाव हैं, सभी के साथ समतापूर्ण व्यवहार अनुभाव है तथा हर्ष, धर्म इसके संचारी भाव हैं -

सिद्ध संग तपवन तहाँ जगत कथा श्मशान जाँनि।
ए विभाव अनुभाव अब समता सबमें आँनि ।।
तत्वज्ञान आवै तहाँ ही निरवेदहि होय।
हरष धर्म संचारि हैं साँत रस जु है सोय ।।[1]

कुँवरकुशल का उपर्युक्त कथन पूर्णतः कुलपति मिश्र के 'रस-रहस्य' के आधार पर है।[2] साहित्यदर्पणकार भी अनित्यत्वदुःखमयत्व आदि रूप से संपूर्ण संसार की असारता का ज्ञान तथा परमात्मा का स्वरूप इस रस का आलम्बन मानते हैं और ऋषि आदिकों के पवित्र आश्रम, हरिद्वार आदि पवित्र तीर्थ, रमणीय एकान्तवन तथा महात्माओं का संग आदि उद्दीपन विभाव मानते हैं। रोमांच आदि अनुभाव तथा निर्वेद हर्ष, स्मरण, मति एवं प्राणियों पर दया इसके संचारी भाव स्वीकार करते हैं।[3] केशवदास सभी से मन का उदास होना शान्त रस का विषय मानते हैं।[4]

1- वही- छन्द सं0 59,60

2- सिद्ध मंडली तपनबन कथा जगत सम्सान।
ए बिभाव अनुभाव पुनि सब मैं समता ज्ञान ।।
धर्य हर्ष संचारी जानिये।
तत्वज्ञान तें जगत मैं जहँ प्रगटै निरवेद।
शांतिरस ताको कहत है नवमो भेद ।। र.र.वृ.छन्द सं0 89,90

3- साहित्यदर्पण, पृ0 121

4- सब तें होइ उदास मन, बसै एक ही ठौर।
ताही सों समरस कहैं, केसव कबि-सिरमौर ।।
रसिकप्रिया- सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 278

चिन्तामणि के अनुसार -वैराग्य से उत्पन्न मन का विकार शम ही शान्त रस का स्थायी भाव है।[1] देव के अनुसार- तत्वज्ञान से सात्विक बुद्धि का उदय होता है, समता का भाव विकसित होता है और मन की शुद्धि होती है।[2] सुरति मिश्र का कथन है कि इसमें जग की असारता आलम्बन बनता है, तीर्थ स्थान उद्दीपन है, शांति,पुलक इसके अनुभाव हैं तथा मति, हर्ष आदि इसके संचारी भाव हैं।[3] भिखारीदास का विचार है कि ईश्वर कृपा, संत सज्जन का साथ, तत्वज्ञान का उपदेश तथा तीर्थ स्थान इसके विभाव हैं, क्षमा, सत्य, वैराग्य, धार्मिक कथाओं में रुचि, ईश्वर की प्रणति, स्तुति, विनय ये अनुभाव हैं।[4]

1- सम कहियत वैराग्य ते निर्विकार मन होइ।

हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ-296 से उद्धृत।

2- तत्व-ज्ञान समत्व करि, उपजत सात्विक-बुद्धि,
शांत सरस सम-बुद्धि बढ़ि, पछितायो मन सुद्धि।

शब्द-रसायन-सं0 डॉ0 जानकीनाथ सिंह मनोज पृ0 100

3- जग असारता बने//दीपन तीरथ आदि।।
शान्त पुलक अनुभाव तिहि।संचारि मनि हर्षादि।।

काव्यसिद्धांत, छन्द सं0 82

4- देव-क्रिया सज्जन-मिलन तत्व ज्ञान उपदेश।
तीरथ विभाव सुमक्ति सम थाइ सांत सुदेश।।
क्षमा सत्य वैराग्य थिति धर्म कथा में चाउ।
देव प्रणाति स्तुति विनय, गुनो संत अनुभाव।।

भिखारीदास(प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 69

कुँवरकुशल ने शांत रस के सम्बन्ध में निम्नलिखित कथन प्रस्तुत किया है -

यह रस ही कहियै। भावध्वनि न कहावैं। तत्वज्ञान तैं जो निर्वेद उपजत है सोइ स्थाइ है ।। अरु जहाँ स्थाइ प्रधानता करिकैं व्यंग्य होइ सोइ रस है। यह काव्य ही मैं होइ ।। नाट्य मैं न होय । याहु कौं हेतु कहत हैं। निर्वेदवासनांत हृदय की नाट्य देषिवेगी इच्छा न होइगी । यमैं बहोत बिषाय हैं ।। तातैं मति कहूं बिकार उपजैं । या डर सौं ।। अरु काव्य तो एक विषाय हैं ।। यातैं सुनुबे मैं कहूं अटक नाहीं । तातैं कबित मैं यह कह्यौ ।। यह रस सहृदय कौं होत हैं ।।[1]

कुँवरकुशल का यह कथन पूर्णतया कुलपति मिश्र पर आधारित है।[2] यत्र-तत्र शाब्दिक अन्तर ही दृष्टिगत होता है। जिस प्रकार कुलपति मिश्र ने धनंजय[3] के आधार पर शांत रस की स्थिति को नाटक में स्वीकार नहीं की है उसी प्रकार कुँवरकुशल भी अपना आशय प्रकट करते हैं। तत्वज्ञान अर्थात् वैराग्य(ईर्ष्या, गृहकलह आदि से उत्पन्न होनेवाला वैराग्य नहीं) से उत्पन्न निर्वेद ही शान्तरस का स्थायी भाव है जिसे विश्वनाथ ने 'शम' की संज्ञा से अभिहित किया है। काव्य को एक विषयी और नाटक को बहु-विषयी मानना युक्तिसंगत नहीं। काव्य में भी अनेक विषय वर्णित किए जाते हैं। अत: काव्य के साथ-साथ नाटक में भी शांत रस की स्थिति संभव है। शांत रस की अनुभूति सहृदय को होती है ऐसा कुँवरकुशल ने कहा है। परन्तु यह बात तो सभी रसों की अनुभूति के सम्बंध में कही जा सकती है। क्योंकि सहृदय व्यक्ति ही प्रत्येक रस का आस्वादन करने में सक्षम हो सकता है। नीरस व्यक्ति न तो श्रृंगारिक वर्णन सुनकर ही आनंदित हो सकता है और न ही वीरोचित

1- ल.ज.सिं0, षा.त.छन्द सं0 60 कीटीका

2- र.र.,तृ.वृ.छन्द सं0 90 की टीका।

3- शममपि केचित्प्राहु: पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।

हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी ,पृ0 309 से उद्धृत ।

काव्य सुनकर उत्साहित हो सकता है। अतः केवल शांत रस की अनुभूति सहृदय को हो सकती है, ऐसा उचित प्रतीत नहीं होता।

कुँवरकुशल द्वारा प्रस्तुत शांत रस का उदाहरण -

मात पिता सुत बंधु सुता अरु नाती औ गोती के संगि न जाऊँ ।।
दासी औ दासनि खास खवासनि मित्रनि तैं मन नांहि मिलाऊँ ।।
छोरि जंजाल यहै जगजात कौ व्याल ज्यौं माल के खाल बहाऊँ ।।
काननि और कथा न सुनौं ऽकहूं कानन बैठि कान्ह कौ गाऊँ ।।[1]

भावध्वनि :

कुँवरकुशल भाव-ध्वनि का लक्षण देते हुए कहते हैं कि जहाँ पर संचारी भाव की प्रधानता होकर देव आदि विषयक रति का वर्णन हो उसे भाव ध्वनि कहते हैं -

संचारी ये व्यंग्य सो देवराज रति देखि।
जह प्रधानता करि जबै पढै भावध्वनि पेखि ।।[2]

कुँवरकुशल ने अपना लक्षण मम्मट के आधार पर प्रस्तुत किया है।[3] मम्मट ने भी भावध्वनि के देवरति तथा संचारी भावों की प्रधानता ये दो ही विषय माने हैं।[4]

1- ल.ज.सिं०, ख.त.छन्द सं० 61

2- वही- छन्द सं० 63

3- रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजितः ।।
काव्यप्रकाश, पृ० 94

4- संचारिणः प्रधानानि देवादि विषयारतिः।
उद्बुद्धमात्र स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ।।
साहित्यदर्पण, पृ० 124

विश्वनाथ ने इनके अतिरिक्त भी स्थायी भाव के उद्बुद्ध रूप को भी भावध्वनि का विषय बताया है।[1] हिन्दी में चिन्तामणि[2], कुलपति मिश्र[3], सुरति मिश्र[4], सोमनाथ[5], प्रतापसाहि[6] ने मम्मट का ही अनुकरण किया है।

1- संचारिण: प्रधानानि देवादि विषयारति : ।।
उद्बुद्धमात्र स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ।।
साहित्यदर्पण, पृ0 124

2- देव-पुत्र गुरु आदि जे तिनमें जो रतिभाव ।
कै संचारी व्यक्ति सो शुद्ध भाव समझाव ।।
हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 297 से उद्धृत ।

3- संचारी यै व्यंग पुनि देव राजरति होइ ।
जहं प्रधानता करि कहत भावध्वनि है सोइ ।।
र.र.तृ.वृ., छन्द सं0 92

4- जहां विभिचारी मुख्य अङ्ग । देवतादि रति जांनि ।
सु है भाव सुत नेह तिहि । रस हूं कहत बखांनि ।।
काव्यसिद्धांत, छं0 सं0 100

5- जहं संचारी होत है व्यंगि कवित में आनि ।
देव, राज, रति भाव ध्वनि तहं पहिचानि ।।
हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 327 से उद्धृत ।

6- संचारी प्राधान्य करि जहाँ व्यंग्य ठहराय ।
देवराज रति आदि है, भाव-ध्वनि ठहराय ।।
वही- पृ0 366 से उद्धृत ।

इसके अतिरिक्त कुँवरकुशल ने रसध्वनि और भावध्वनि का अन्तर बताते हुए कहा है कि जहाँ कवि की रति साक्षात देव विषयक अथवा राजविषयक होती है वहाँ पर वर्णन विभावादि निरपेक्ष हुआ करता है यद्यपि भरतमुनि ने भाव और रस की अन्योन्याश्रयी स्थिति स्वीकार की है।[1] यहाँ पर केवल कवि की उक्ति होती है कवि निबद्ध वक्ता की उक्ति नहीं जिसमें विभावादिकों की प्रतीति हुआ करती है। काव्य में आनंद अधिक मिलता है अतः रमणीयता की दृष्टि से रस कहलाता है और भावध्वनि में अधिक विचारणा की आवश्यकता होती है।[2] यह कथन भी साहित्यदर्पणकार पर आधारित है।[3] इसके अतिरिक्त एक अन्य उदाहरण देते हुए रस ध्वनि तथा भावध्वनि का अंतर स्पष्ट किया है -

"साहिब रस सब ठौर सर तऊ कहुं रस भाव कहाय ।
सेवक के ज्यों ब्याह साथि ह्वै राजा जानहिं जाय ।।"[4]

अर्थात् यद्यपि राजा ही सर्वोपरि होता है तथापि सेवक के ब्याह में उसे भी बरातियों के साथ-साथ पीछे ही चलना पडता है, उसी प्रकार रस प्रमुख होते हुए भी भाव महत्ता ग्रहण कर लेता है। यह दृष्टान्त साहित्यदर्पण के आधार पर दिया गया है।[5] हिन्दी में कुलपति मिश्र[6] तथा प्रतापसाहि[7]

1- न भावहीनोऽस्ति रसो नभावो रसवर्जितः। परस्परकृता सिद्धिरनयोरस भावयोः।। साहित्यदर्पण, पृ0 124 से उद्धृत ।

2- ल.ज.सिं0, ष.त, छं0 सं0 63 की टीका ।

3- रसेन सह वर्तमाना अपि + + -। विभावादिभिरपरिस्फुटतया रसरूपतामनाय- यमानाश्च स्थायिनो भावा भावशब्दवाच्याः । वही- पृ0 124

4- ल.ज.सिं0, ष.त. छं0 सं0 73

5- साहित्यदर्पण, पृ0 124

6- र.र.तृ.वृ.छं0 सं0 96 की टीका ।

7- हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी ,पृ0 367 से उद्धृत ।

ने भी भावध्वनि और रसध्वनि का अंतर स्पष्ट किया है। कुँवरकुशल ने संचारी भावध्वनि, देवरति भावध्वनि तथा राजरति भावध्वनि के भी उदाहरण दिये हैं। जिनमें से संचारी भावध्वनि का उदाहरण द्रष्टव्य है -

> वहै वृंदावन मंजु कुंज पुंजनि मैं गुंजनि के हार हीयपै रैं पहिराइबौ ।।
> ग्वालनि के बालनि सौं ख्याल करें ताल दै कै बंसीवट बैठी गीत सारंग कौ गाइबौ ।।
> पवन झकोर वहै मोरन की जोर घोर ठौर फिरै नीकी गइअनि चराइबौ।।
> इतनौ ये कहिबै तैं आयौ वृज आंखिन मैं भूले रु सब काम भौन भीतरी ही जाइबौ ।।[1]

इस उदाहरण पर कुलपति मिश्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण की छाया दिखती है।[2]

रु---र

<u>रसाभास भावभास</u> :- कुँवरकुशल के अनुसार जहाँ पर रस और भाव का अनुचित वर्णन होता है वहाँ पर रसाभास और भावाभास होता है।[3] मम्मट भी अनौचित्य

1- ल.ज.सिं0, षा.त.छं0 सं0 64

2- वहै वृंदावन वेई मंजु कुंज पुंजनि मैं गुंजनि के फूल हार गहनौ बनाइबौ।
वेही भांति खेलि खेलि संग ग्वाल बालनि के आनंद मगन भये मुरली बजाइबौ ।।
मोरनि की घोर मंद पवन जकोर अरु बंसीबट नट लैठि सारंग कौ गाइबौ।
इतनौं कहत वृज आखिनु मैं आइ गयौ भूले राजकाज मौन भीतर कौ जाइबौ।।
र.र.तृ.वृ.छन्द सं0 93

3- जह अनुचित रस भाव जब यह कहियै आभास ।
कहत इहां कुंअरेस कवि करिकै कछुक प्रकास ।।
ल.ज.सिं0, षा.त., छन्द संख्या 67

वर्णन में रसाभास अथवा भावाभास मानते हैं।[1] साहित्यदर्पण में भी इसी प्रकार का आशय प्रस्तुत किया गया है।[2] हिन्दी में अन्य विद्वान् जैसे चिन्तामणि[3] कुलपति मिश्र[4], सुरति मिश्र[5], सोमनाथ[6], भिखारीदास[7] तथा प्रतापसाहि[8]

1- तदाभास अनौचित्य प्रवर्तिता: । काव्यप्रकाश, पृ0 96

2- अनौचित्यप्रवृत्तत्व आभासो रसभावयो: ।

साहित्यदर्पण, पृ0 125

3- हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 297 से उद्धृत ।

4- अनुचित है रसभाव जहं तें कहियें आभास ।

र.र.गृ.ब्र. छन्द संख्या -

5- अनुचित गति जहं रसनि की, रसाभास तिहि दाइ ।
व्यभिचारी आदिक जहां अनुचित भावाभास ।
दैन्य भाव असमर्थ सों गनिका लाज प्रकास ।।

काव्यसिद्धांत, छन्द सं0 90, 102

6- अनलायक रस बरनिये जहं कवित्त में आय ।
रसाभास तासों कहें सकल रसिक सुख पाय ।
अनुचित भाव कवित्त में आनों, ताको भावाभास बखानों ।।

हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 327 से उद्धृत ।

7- रस सों भासत होतु है, जहां न रस की बात ।
रसाभास ताको कहै, जैहे मति अवदात ।।

भिखारीदास (प्रथम खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 83

भावजु अनुचित ठौर है, सोइ भावाभास ।

भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 36

8- जहं अनुचित रस भाव को रसाभास तहं जानि ।

हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 366 से उद्धृत ।

सभी रस और भाव के अनुचित वर्णन में ही रसाभास और भावाभास की स्थिति स्वीकार करते हैं।

अतः हम देखते हैं कि कुँवरकुशल का कथन परम्परागत ही है । रसाभास और भावाभास के उदाहरण इस प्रकार हैं -

बैननि सौं कित लाज बसि खुरिकैं अपनी देह ।
है लालच कित हितहि सौं नागरि कियौ जु नेह ।।[1]

यहाँ पर एक नायिका का अनेक नायकों के साथ प्रेम भाव होना अनुचित है इसलिए यहाँ पर रसाभास है ।

सात समुद्र ये षोदे कैसे कंचन सौं किहिं कियौ सुमेर ।
केकी पांषौं रंगी किहिं विधि गनिजै क्यौं तारनि के ढेर ।।[2]

यहाँ पर ईश्वर निर्मित पदार्थों के सम्बंध में चिन्ता करना अनुचित होने के कारण भावाभास है ।

इसके अतिरिक्त भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता तथा भावसन्धि के लक्षण न देते हुए केवल उदाहरण ही दिये हैं -

भावोदय :

लाल प्रवीन है कांम कला मैं न्हैं अबला रति रंग लह्यौं ।।
सोये पिया अरू जागें सिया सुपनो लषि पी इकु नाम गह्यौं ।।
सो सुनि चौंकि परी ललनां वह बोल सु कानि गयो न सह्यौं ।।
~~पीय~~ पीय के सीस तरैं ही भुजा तैं निकारि कै ~~एक~~ रीस तैं मांन गह्यौं ।।[3]

1- ल.ज.सिं0, षा.त.छन्द सं0 68

2- वही- छं0 सं0 69

3- वही- छं0 सं0 70

यहाँ पर किसी अन्य नायिका का नाम सुनकर ईर्ष्या का भाव उदित होने से भावोदय है।

भावसन्धि :

इहिं तट गुरु जन ये षारे बैठे उत हरि बीर।
बनै नरहिबै देषिबै यौं दुहुं करी अधीर।।[1]

यहाँ पर लज्जा और उत्सुकता एक साथ दो भावों के कारण भावसन्धि है।

भावशबलता :

ललके दृग राते लषौं यह रूषो फलकाय।
नेह भरे निरषियै परसत सकुचे पाय।[2]

यहाँ औत्सुक्य, कोप, उदासीनता, लज्जा तथा दीनता आदि भावों की एक साथ उपस्थिति में भावशबलता है।

भावशांति :

बैन सुने कहुं बावरी बसै चित्त में षोद।
नेह भरे पिय नैन लषि भूलि गई सब भेद।।[3]

किसी अन्य नायिका के शब्द सुनने पर चित्त में जो खेद उत्पन्न हुआ था वह प्रियतम के प्रेम भरे नेत्र देखकर समाप्त हो जाता है। पूर्व भाव की शाँति होने के कारण भावशांति है।

1- ल.ज.सिं0, षा.त. छन्द सं0 71

2- वही- पृ0 छन्द संख्या 72

3- वही- छन्द संख्या 73

इन भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता तथा भावसन्धि के उदाहरणों पर कुलपति मिश्र का प्रभाव देखा जा सकता है।

संलक्ष्यक्रमध्वनि :

संलक्ष्यक्रमव्यंग्य की व्याख्या करते हुए मम्मट ने 'रणान और अनुरणान' का[1] तथा साहित्यदर्पणकार ने ठुनाके की क्रमश: मद्धिम पड़ती ध्वनि[2] उदाहरण प्रस्तुत किया है। इनमें जो क्रम रहता है वह स्पष्ट ही लक्षित होता है। संलक्ष्य-क्रमव्यंग्य के सम्बंध में कुँवरकुशल ने कहा है कि इससे अभिव्यंजित व्यंग्यार्थ में एक परछाई सी अवश्य विद्यमान रहती है जो शब्द और अर्थ के माध्यम से दृष्टिगत होती है अर्थात् यहाँ पर व्यंजक और व्यंग्यार्थ की प्रतीति में एक प्रकार का सम्बन्ध रहता है। सम्भवत: इसी को स्पष्ट करने के लिए कुँवरकुशल ने 'झाई' शब्द का प्रयोग किया है-

वाचक दूजे बाच्य तैं प्रगटै झाँई पाय ।।
व्यंग्य बिना साथहिं बरनि क्रमधुनि ये जु कहाय ।।[3]

यहाँ पर कवि अन्य विद्वानों से थोड़ी भिन्नता अवश्य है। क्योंकि रणान और अनुरणान तथा घण्टे की ठुनाके की ध्वनि पहले तीव्रतर तत्पश्चात् सूक्ष्मतर होती जाती है जिसमें स्पष्ट ही क्रम लक्षित होता है। लेकिन 'झाई' से एक प्रकार के हलके से आवरण की ओर ध्यान आकर्षित हो जाता है । यहाँ पर स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। झाई सर्वत्र एक ही प्रकार की रहती है।

1- अनुस्वानाभसंलक्ष्यक्रम व्यंग्यस्थितिस्तुय:। काव्यप्रकाश, पृ0 100

2- साहित्यदर्पण, पृ0 133

3- ल.ज.सिं0, षा.तं0 छन्द संख्या 74

--- उसका स्वरूप सदैव धुँधलापन लिए हुए रहता है जो अस्पष्टता की ओर संकेत करता है अर्थात् तात्पर्य यह हुआ कि संलक्ष्यक्रमध्वनि में पूर्वापर व्यंग्यार्थ और व्यंजक में जो सम्बन्ध रहता है वह परछाईं की सदृश अस्पष्टता लिए हुए रहता है परन्तु वास्तव में यह पूर्वापर क्रम स्पष्ट ही प्रभासित हो उठता है। कुँवरकुशल ने अपना यह मत कुलपति मिश्र के आधार पर प्रस्तुत किया है।[1] कुँवरकुशल और कुलपति मिश्र के कथन में साम्य होते हुए भी थोड़ा विरोधाभास दृष्टिगत होता है। जहाँ कुलपति मिश्र व्यंग्य की उपस्थिति पर बल देते हैं वहीं कुँवर कुशल व्यंग्य बिना साथहिं कहते हैं। यहाँ पर 'बिना' शब्द का प्रयोग उचित नहीं प्रतीत होता है। व्यंग्य तो रहता ही है फिर व्यंग्य बिना कैसे ? पुनः 'साथहिं' शब्द के प्रयोग का क्या तात्पर्य ? अतः हम कह सकते हैं कि 'व्यग्य साथहिं' उचित है।

कुँवरकुशल ने संलक्ष्यक्रमध्वनि के तीन भेद बताये हैं -

1- शब्दमूलध्वनि

2- अर्थध्वनि

3- शब्दअर्थ मूल व्यंग्य

इन्हीं को मम्मट ने शब्दशक्त्युद्भव, अर्थशक्त्युद्भव, और शब्दार्थशक्त्युद्भव कहा है।[2] भिखारीदास ने भी शब्दशक्ति, अर्थशक्ति और शब्दार्थ शक्ति ही माने हैं।[3] कुँवरकुशल ने इनके जो नामकरण किए हैं वे कुलपति मिश्र के रस-रहस्य के आधार पर हैं।

1- सबद अरथ पुनि दुहुन ते झाईं सी परतीति।
व्यंग होत तिन साथ ही जहाँ सुक्रम ध्वनि रीति।। र.र.तृ.वृ.छं० सं० 3

2- काव्यप्रकाश, पृ० 100

3- होत लक्ष्यक्रम व्यंगि मैं, तीन भाँति की व्यक्ति।
शब्द अर्थ की सक्ति है, अरु सब्दारथ सक्ति।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 47

1-शब्दमूलध्वनि :

क यहाँ पर जिस व्यंग्यार्थ का प्रत्यायन हुआ करता है वह शब्द के आधार पर होता है। कुँवरकुशल के कथनानुसार जहाँ शब्द में निहित व्यंग्य प्रकट किया जाता है वहाँ शब्दध्वनि होती है।[1] यहाँ पर शब्द की महत्ता प्रतिपादित की जाती है। मम्मट ने कहा है कि जिसमें शाब्दी व्यंजना अनुरणन सदृश व्यंग्यार्थ का प्रत्यायन किया करे।[2] कुलपति मिश्र ने भी समर्थ शब्द से व्यंग्य की प्रतीति सम्भव मानी है।[3] भिखारीदास ने कहा है कि अनेकार्थमय शब्द से शब्दशक्ति को पहचाना जा सकता है।[4] वास्तव में शब्द का एक से अधिक अर्थ ही आवश्यक है तभी उसके माध्यम से शब्दध्वनि की व्यंजना हो सकती है। इस तथ्य की ओर भिखारीदास को छोड़कर किसी अन्य विद्वान् ने संकेत नहीं किया है। शब्दध्वनि के दो भेद हैं - एक अलंकार रूप तथा दूसरा वस्तु रूप -

अलंकार फिर बस्तु ये व्यग्य सबद तैं बोलि।[5]

इन दोनों रूपों में शब्द की महत्ता ही दृष्टिगत होती है। शब्द के माध्यम से ही इनमें व्यंग्यार्थ की व्यंजना हुआ करती है। यदि उस शब्द को हटा दिया जाये तो व्यंग्यार्थ भी चमत्कार विहीन हो जायेगा। कुँवरकुशल ने इन दोनों रूपों के लक्षण नहीं दिये हैं केवल उदाहरण ही दिये हैं। मम्मट ने बताया है कि वस्तु से अलंकार में अलंकार रूप व्यंग्यार्थ चमत्कारजनक लगा करता है और

1- व्यंग्य बतावैं शब्द कौ तहाँ शब्द धुनि तोहि।ल.ज.सिं0ष.त.,छं0 सं0 75

2- काव्यप्रकाश, पृ0 100

3- व्यंग कहत समरथ सवद सवद ध्वनि है सोइ।

र.र.तृ.वृ.छं0 सं0 4

04- अनेकार्थमय सब्द सौं, सब्दसक्ति पहिचानि।

भिखारीदास(द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 47

5- ल.ज.सिं0,ष.त.छं0 सं0 75

दूसरे अर्थात् वस्तु से वस्तु में वस्तुमात्र रूप व्यंग्यार्थ सुंदर प्रतीत हुआ करता है।[1] भिखारीदास भी कहते हैं कि जहाँ पर सीधा कथन हो, अलंकार न हो ऐसे स्थलों पर व्यंग्यपूर्ण शब्द से वस्तु से वस्तु रूप शब्द शक्ति प्रकट होती है।[2] तात्पर्य यह है कि दोनों रूपों में शब्द की व्यंजकता तो अवश्य रहती है कहीं पर वस्तु रूप में तो कहीं अलंकार रूप में। वस्तु रूप में सीधे ही व्यंजक शब्द का प्रयोग मिलता है और अलंकार रूप में व्यंग्य को स्पष्ट करने के लिए अलंकार का सहारा लिया जाता है। सीधे सीधे न कहकर किसी भी अलंकार का प्रयोग करके अपने आशय को व्यंग्यार्थ रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

कुँवरकुशल ने तीन उदाहरण अलंकार रूप के तथा एक उदाहरण वस्तु रूप का दिया है। इनमें से एक कुलपति मिश्र के उदाहरण का रूपान्तरण है तथा दो मम्मट के रूपान्तरण हैं। वस्तु रूप का उदाहरण भी काव्यप्रकाश से ही उद्धृत है। अलंकाररूप के एक उदाहरण का तुलनीय वर्णन प्रस्तुत है -

मम्मट द्वारा दिया गया उदाहरण -

उल्लास्य कालकरवाल मुखाम्बुवाहम् देवेन येन जठरोर्जितगर्जितेन।
निर्वापित: सकल एव रणेरिपूणां धाराजलैस्त्रिजगति ज्वलित: प्रताप:।।[3]

1- काव्यप्रकाश, पृ0 101

2- सूधी कहनावति जहाँ, अलंकार ठहरै न।
ताहि वस्तुसंज्ञा कहैं, व्यंगि होइ कै बैन।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 47

3- काव्यप्रकाश, पृ0 101

कुँवरकुशल द्वारा दिया गया उदाहरण -

काल करवाल महा अम्बु बाह कौं प्रकाशि,
उमडी घटा की घटा चाप कों चडायौ है।
बरबंड बीरहंक गाज की साजि साजि,
उग्र अनिरूद्ध असौं वास दरसायौं है।।
घरी एकु आंखि न उघारै मची भराभरी,
धुंधुरित आसमान भांन तम छायौं है।
देव लखधीर जहां धारा जल के प्रवाह,
अरि कौं प्रताप वहिन पल मैं बुझायौं है।।[1]

दोनों के उदाहरण भले ही एक है लेकिन थोड़ी भिन्नता अवश्य मिलती है। शाब्दिक अनुवाद के कारण दोनों में साम्य भले ही हो लेकिन उद्देश्य दोनों के ही भिन्न हैं। जहाँ काव्यप्रकाशकार ने वाच्यार्थ के रूप में राजा के प्रताप का वर्णन किया है और व्यंग्यार्थ के रूप में देवताओं के राजा इन्द्र के पराक्रम की अभिव्यंजना की है वहीं पर कुँवरकुशल ने वाच्यार्थ के रूप में वर्षा का वर्णन किया है और उसी के माध्यम से अलंकार रूप में अपने आश्रयदाता राजा लखपति के शौर्य, वीरता तथा पराक्रम का वर्णन किया है। यही कवि को अभिप्रेत भी रहा है। अत: अपने उद्देश्य के अनुकूल वर्णन में पर्याप्त अंतर कर दिया है। एक अंतर और जो दृष्टिगत होता है वह है नाम का प्रयोग। जहाँ मम्मट ने अपने उदाहरण में किसी राजा का नामोल्लेख नहीं किया है क्योंकि उनका उद्देश्य व्यंग्यार्थ रूप से इन्द्र का वर्णन करना ही रहा है। जबकि कुँवरकुशल को महाराजा लखपति की प्रशंसा करना ही अभिप्रेत रहा है। यों सारे वर्णन से हमारे सामने एक वर्षा ऋतु का ही दृश्य उपस्थित होता है लेकिन अंतिम पंक्ति में 'देव' शब्द के साथ 'लखधीर' के प्रयुक्त होने से यह संकेत मिल जाता है कि राजा की प्रशंसा व्यंग्यार्थ

1- ल.ज.सिं0,ष.त.छन्द सं0 77

रूप में है और वाच्यार्थ रूप में वर्षा का। इसलिए सारा वर्णन मम्मट के आधार पर होने पर भी 'लक्षाधीर' शब्द का सार्थक प्रयोग किया गया है।

वस्तु से वस्तु :

वस्तु से वस्तु का उदाहरण मम्मट ने प्रकृतगाथा में से लेकर प्रस्तुत किया है।[1] उसी का भाषानुवाद करके कुँवरकुशल ने प्रस्तुत किया है -

पंथी या पुर तलप नहिं पथर थल बलवीन ।।
पेषि पयोधर उन्नये बसैं तुव सिर परवीन ।।[2]

अर्थध्वनि :

मम्मट ने इसका लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जिसमें आर्थी व्यंजना के द्वारा अनुरणन सदृश व्यंग्यार्थ का प्रत्यायन हुआ करे।[3] शब्दध्वनि में तो शब्द के बदलने पर व्यंग्यार्थ नष्ट हो जाता है लेकिन जहाँ शब्द-परिवर्तन के बाद भी अर्थात् उन शब्दों के पर्यायवाची शब्दों के द्वारा भी व्यंग्यार्थ का बोध होता रहे, वहाँ अर्थ शक्ति-उद्भवध्वनि होती है।[4] भिखारीदास भी इस ध्वनि में अनेकार्थमय शब्दों को त्याज्य मानते हैं। अर्थात् ऐसे शब्द जिनका एक से अधिक अर्थ निकलता हो ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।[5] कुँवरकुशल ने इसकी कोई परिभाषा नहीं दी है। मम्मट, विश्वनाथ इत्यादि के आधार पर ही कुँवरकुशल ने भी अर्थ-ध्वनि

1- पंथिण ण ए त्थ सत्थरमत्थि मणं पत्थरत्थले गामे ।
उण्णअपओहरं पेक्खिऊण जइ वससि ता वससु ।। काव्यप्रकाश, पृ0 103

2- ल.ज.सिं0 षा.त.छन्द सं0 79

3- काव्यप्रकाश, पृ0 101

4- काव्यालोक(द्वितीय उद्योत)पं0 ~~xxxxx~~ रामदहिन मिश्र, पृ0 292

5- अनेकार्थमय सब्द तजि, और सब्द जे दास ।
अर्थसक्ति सबकों कहैं, धुनि में बुद्धि विलास ।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 48

के तीन भेद स्वीकार किये हैं -

1- स्वत: सम्भवी अर्थध्वनि ।

2- कवि प्रौढ़ोक्ति ।

3- कवि निबद्ध वक्ता की उक्ति ।[1]

पुन: इन तीनों के चार-म चार भेद किए गए हैं - वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार, अलंकार से अलंकार, तथा अलंकार से वस्तु -

येक येक के भेद ये च्यार च्यार और च्यार ।
अलंकार अरु बस्तु ये व्यंग्य परस्पर बार ।।[2]

स्वत: सम्भवी अर्थध्वनि :

कुँवरकुशल इसे अर्थ रूपक भी कहते हैं । इसका लक्षण देते हुए कहते हैं कि जहाँ लोक प्रसिद्ध अर्थ से व्यंग्य प्रकट हो ।[3] मम्मट के मतानुसार- यह अर्थ केवल कवि-कल्पना-प्रसूत नहीं हुआ करता अपितु ऐसा हुआ करता है जिसका अस्तित्व लोक में भी प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में भी अनुभव किया जा सकता है और सर्वथा औचित्य के साथ अनुभव किया जा सकता है ।[4] भिखारीदास भी स्वत: सम्भवी अर्थध्वनि को जग-कहनावति के अंतर्गत स्वीकार करते हैं ।[5]

1- अर्थ रूप प्रौढोक्ति अरु वक्ता उकति विचार ।
सिद्ध अर्थ तैं होय सो कहि ध्वनि तीनि प्रकार ।।ल.ज.सिं०ष.त.छं०सं080

2- वही - छन्द सं0 81

3- वही - छन्द संख्या 80 की टीका ।

4- काव्यप्रकाश, पृ0 105

5- बाचक लक्षक बस्तु को, जग-कहनावति जानि ।
स्वत: संभवी कहत हैं कबि पंडित सुखदानि ।।
भिखारीदास (द्वि0खण्ड)सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 49

पं0 रामदहिन मिश्र ने भी कहा है कि 'जो वर्णित विषय सम्भव हो, केवल कवि कल्पित न हो वह स्वत: सम्भवी है।'[1] अत: कुँवरकुशल की मान्यता भी परंपरागत है। कुँवरकुशल ने स्वत: संभवी के चारों भेदों के उदाहरण दिये हैं। वस्तु से वस्तुध्वनि का उदाहरण द्रष्टव्य है -

> आयो है आपने गेह यहै नर देखि कै बैठि रही कहा छानी ।।
> बेटी हमारी ये बात सुनो बहु दौलति याही के गेह मैं आनी ।।
> आरसू माँझि सिरोमनि जाँनि यहै सब घूरत मैं अगिवाँनी ।
> काँननि अक्का के बैंननि कौं सुनि नैंननि फूलि वहै मुसिकाँनी ।।[2]

इस उदाहरण पर मम्मट की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है।[3] भिखारीदास ने भी इस उदाहरण को अपने 'काव्य-निर्णय' में प्रस्तुत किया है।[4] कुँवरकुशल और मम्मट के उदाहरण में भिन्नता मिलती है। कुँवरकुशल ने इस उदाहरण को समयानुकूल बनाकर चित्रित किया है। रीतिकाल में दूतियाँ नायिकाओं को नायक से प्रेम करने के लिए प्रेरित करती थीं। इस युग में नारी का मात्र पत्नीत्व अथवा प्रेमिका का रूप ही चित्रित हुआ है। किसी भी पुरुष के संपर्क में आने पर यही एक प्रेम का भाव मन में उदित होता था। एक नगर नायिका के घर में पुरुष आया है तो दूती नायिका को उससे प्रेम करने अथवा विवाह करने के लिए प्रेरित करती है, जबकि मम्मट ने जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वहाँ

1- काव्यालोक (द्वितीय उद्योत) - पं0 रामदहिन मिश्र, पृ0 292

2- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 82

3- अलसशिरोमणि धुत्ताण अग्गिमो पुत्तिधणसमिद्धिमओ ।
इअ भणिएण णअंगी पप्फुल्लविलोअणा जाआ ।। काव्यप्रकाश, पृ0 105

4- सुनि सुनि प्रीतम आलसी, धूत सूम धनवंत ।
नवल-बाल हिय मों हरष, बाढ़त जात अनंत ।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 50

पर सुन्दरी की स्वेच्छा देखकर ही माँ उसे विवाह की एक प्रकार से स्वीकृति देती प्रतीत होती है। कुँवरकुशल के उदाहरण को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई शिकारी किसी पक्षी को अपने जाल में लपेटने की योजना बना रहा हो क्योंकि इसमें स्पष्ट वर्णन मिलता है कि वह नायिका चुप बैठी है तब वृद्धा कहती है कि इसे देखकर तू चुप क्यों बैठी है? उस वृद्धा की बातें सुनकर उसके नेत्रों का खिलना और होठों पर की मुस्कान से ऐसा लगता है मानों उसे शिकार पसन्द आ गया हो और वह उसका शिकार करने के लिए कटिबद्ध हो गई हो।

कवि प्रौढ़ोक्ति :

मम्मट के मतानुसार यह कवि-कल्पना-प्रसूत हुआ करता है। इसका अस्तित्व लोक में हो या न हो काव्य में तो अवश्य ही हुआ करता है।[1] भिखारीदास की भी यही मान्यता है।[2] कुँवरकुशल ने कोई लक्षण नहीं दिया है लेकिन उदाहरणों को देखने पर विदित होता है कि इनका भी अभिप्राय यही रहा है जो उक्त विद्वानों का रहा है। अर्थात् कवि प्रौढ़ोक्ति का विषय मात्र कवि-जगत् में ही संभव हो सकता है। उसकी सत्यता का घेरा केवल कवि-जगत् तक ही रहता है। कवि जगत् से बाहर इसका अस्तित्व नगण्य सा हो जाता है। कुँवरकुशल ने जो वस्तु से वस्तु का उदाहरण दिया है उसका विषय कवियों द्वारा स्वीकृत यश की श्वेतता है। यश का रंग कवियों द्वारा श्वेत माना गया है वास्तविक जगत में यह दिखलाई नहीं पड़ता परन्तु कवि अपने काव्य में इस प्रकार का वर्णन करते हैं। कुँवरकुशल ने भी अपने आश्रयदाता महाराव लखपति जी के यश का वर्णन किया है -

---

1- काव्यप्रकाश, पृ0 105

2- जग कहनावति तें जु कछु, कबि-कहनावति भिन्न।
तेहि प्रौढ़ोक्ति कहैं सदा, जिन्ह की बुद्धि अखिन्न।।
उज्जलताई कीर्ति की श्वेत कहैं संसार।
सब छायो जग मैं कहैं, खुले तरुनि के बार।।

भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 49

कछपति लाखा सुजस कौ निरखत सुर कौ नाथ ।
येह रूप सब ठाउं कुल हाथी नावैं हाथ ।।[1]

अर्थात् लखपति राजा के यश की श्वेतता को इन्द्रराज देखते हैं । उस श्वेतता में इन्द्र का श्वेत हाथी ऐरावत भी छिप गया है जो हाथ नहीं आ रहा है । कुलपति मिश्र[2] तथा भिखारीदास[3] ने भी इसी प्रकार के उदाहरण दिये हैं ।

कवि निबद्ध वक्ता की उक्ति :

मम्मट इसे कविनिबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति-सिद्ध कहते हैं। इसका लक्षण इस प्रकार दिया है - यह अर्थ कवि द्वारा उद्भावित नानाविध चरितों की कल्पना से उद्भावित अर्थ है ।[4] पं० रामदहिन मिश्र का कथन है कि - यह ध्वनि वहीं होती है जहाँ कवि-कल्पित पात्र की प्रौढ़(कल्पित) उक्ति द्वारा किसी वस्तु या अलंकार का व्यंग्य बोध होता है ।[5] भिखारीदास कवि प्रौढ़ोक्ति और कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति को भिन्न-भिन्न न मानकर एक ही मानते हैं । कुँवरकुशल ~~भी~~ मम्मट के आधार पर अर्थध्वनि के तीनों

1- ल.ज.सिं०,षा.त.छन्द सं० 88

2- राम रावरे सुजस कौं सुरपति सुनत सुभाइ ।
एक रूप सब जग लखै वाहन हू न लखाइ।। र.र.तृ.वृ.छं० सं० 14

3- दास के इसे जबै जस रावरो, गावतीं देववधू मृदु तानन ।
जातो कलंक मयंक को मूँदि औ घाम तैं काहू सतावनो मानन ।
सीरी लगैं सुनि चौंकि चितै दिगदंति तकैं तिरछे दृग आनन।
सेत सरोज लगैं के सुभाइ घुमाइ कै सूँड मलैं दुहुँ कानन ।।
भिखारीदास (द्वि०खण्ड)सं०विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ० 51

4- काव्यप्रकाश,पृ० 10 5

5- काव्यालोक(द्वितीय उद्योत) पं० रामदहिन मिश्र,पृ० 310-11

भेद स्वीकार करते हैं। वास्तव में देखा जाये तो कवि प्रौढ़ोक्ति और कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति में थोड़ा अन्तर अवश्य विद्यमान है। साहित्यदर्पणकार इसी प अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - "कवि कल्पित नायक आदि के समान कवि तो स्वयम् अनुरागादि भावों से युक्त होता नहीं, अत: कवि की प्रौढ़ोक्ति की अपेक्षा कवि निबद्ध वक्ता की प्रौढ़ोक्ति अधिक चमत्कारक होती है।[1] डॉ0 रामदहिन मिश्र भी कहते हैं कि - कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध में तो केवल कवि-कल्पित वस्तु या अलंकार से अलंकार या वस्तु की ध्वनि होती है, किन्तु यहाँ कवि-कल्पित पात्र की प्रौढ़ उक्ति से।"[2] वास्तव में यह सत्य भी है कि कवि जब किसी पात्र की कल्पना करता है तब मानो स्वयं को उसी पात्र में विलीन कर देता है और उस पात्र के अनुरूप ही उसे सुखदुखानुभूति होती है, वह कल्पना-जगत् में स्वयं को ही वह पात्र समझने लगता है। इसलिए कवि की स्वयं की उक्ति से कवि द्वारा कल्पना-जगत् में कल्पित पात्रों की उक्ति अधि अधिक चमत्कारक हुआ करती है। कुँवरकुशल द्वारा प्रस्तुत अलंकार से अलंकार ध्वनि का उदाहरण -

कहत सेम हेम सम काय तुअ बातुहिं बकत बिगोइ ।
लाष आनि झाय कनक ले सही न तुअ रंग सोइ ।।[3]

अर्थात् नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसकी सखी कहती है कि जो तेरे शरीर की तुलना हेम से करते हैं वे झूठ बोलते हैं और लाख बार भी सोने को अग्नि में तपाया जाये तब भी तेरे तन की उज्ज्वलता की बराबरी नहीं कर सकता। यहाँ पर अतिशयोक्ति के माध्यम से व्यतिरेक अलंकार व्यंग्यार्थ

1- साहित्यदर्पण, पृ0 139

2- काव्यालोक(द्वितीय उ उद्योत) पं0 रामदहिन मिश्र, पृ0 311

3- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 94

में अभिव्यक्त हो रहा है। कुँवरकुशल के इस उदाहरण पर कुलपति मिश्र के 'रस-रहस्य' की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है।[1]

शब्दार्थ मूल व्यंग्य :— मम्मट के अनुसार जहाँ शाब्दी और आर्थी व्यंजनायें अनुरणनोपम व्यंग्यार्थ की प्रतीति करवाया करें।[2] अर्थात् जहाँ शब्द और अर्थ दोनों से मिल कर व्यंग्यार्थ की व्यंजना हुआ करती है वह शब्दार्थ ध्वनि है। इसका एक ही प्रकार माना गया है। कुँवरकुशल द्वारा शब्दार्थ ध्वनि का उदाहरण इस प्रकार है -

स्यामा आनन सोम सुभ। तारनि शोभा देत।
रसिकन के कुअरेस में। हियैं बढ़ावैं हेत।।[3]

प्रथम अर्थ-स्यामा अर्थात् स्त्री अथवा सोलह वर्षीय नायिका का मुख सुन्दर है। उसमें नेत्र रूपी तारे शोभायमान होते हैं। रसिकों के हृदय में हित अर्थात् उल्लास बढ़ाते हैं। द्वितीय अर्थ-स्यामा अर्थात रात्रि में चन्द्रमा शुभ है। तारे बहुत शोभा पाते हैं, रसिकों के हृदय को रात्रि आनंदित करती है। उक्त उदाहरण मम्मट से प्रभावित है। परन्तु मम्मट का उदाहरण अधिक प्रभावपूर्ण तथा भावाभिव्यंजना में समर्थ है।[4]

1- बादि बकत है हेम सम समझत नहि विगोइ।
हेम लेइ जो अनिनि तउ तुव रंग होइ न होइ।।
र.र.तृ.वृ.छन्द सं0 20

2- काव्यप्रकाश, पृ0 101

3- ल.ज.सिं0 त.छन्द सं0 96

4- ~~अतन्द्र चन्द्राभरणा समुद्दीपित मन्मथा।~~
~~तारकातरला श्यामा सानन्दं न करोति कम्।।~~

अर्थ- चांदनी रात के पक्ष में- चमकते वाले चन्द से विभूषित, कामोद्दीपन में समर्थ और छिटपुट तारावृन्द से रमणीय, चाँदनी की रात, किसे आनन्दविभोर नहीं कर देती।
सुन्दरी युवती के पक्ष में - सुंदर कर्पूरांगराग से सुशोभित शरीर वाली, काम भावनाओं को जगा देनेवाली किंवा चमकते हार में, लहराते मध्य मौक्तिकवाली सुन्दरी युवती किसे आनन्द विभोर नहीं कर देती। काव्यप्रकाश, पृ0 111

कुँवरकुशल ने कुलपति मिश्र की भाँति ध्वनि के संकर और संसृष्टि प्रकार वर्णित नहीं किए हैं जैसा कि मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में दिये हैं। इसके अतिरिक्त कुँवरकुशल ने ध्वनि-भेदों के पदगत या वाक्यगत जैसे उपभेद भी निरूपित नहीं किए हैं मात्र ध्वनि के प्रमुख अठारह भेदों का ही विवेचन किया है।

ध्वनि-भेदों की संख्या :

संस्कृत के आचार्यों ने ध्वनि-भेदों की एक लम्बी तालिका प्रस्तुत की है। मम्मट ने मुख्य इक्यावन भेद मानकर उनके संकर और संसृष्टि भेदों की गणना करके कुल संख्या 10455 तक पहुँचा दी है और साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने अपने ढंग से करके कुल संख्या 5355 बताई है। मम्मट का ध्वनि-भेद वर्गीकरण इस प्रकार है - अविवक्षितवाच्यध्वनि के पदगत और वाक्यगत के आधार पर 4 भेद, असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य-1, संलक्ष्यक्रमव्यंग्य-शब्दशक्ति(पदगत,वाक्यगत)-4, अर्थशक्ति-12, पुन: अर्थशक्ति के ही पदगत, वाक्यगत, प्रबन्धगत के मानकर 36भेद, शब्दार्थ शक्ति-1। इस तरह कुल मिलाकर 46 भेद हुए। असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के पद, पदांश, रचना,वर्ण, वाक्य और प्रबंधगत नामक छ: भेद भी किए हैं। हिन्दी में चिन्तामणि ने असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के छ: पद, पदांश, रचना, वर्ण, वाक्य और प्रबन्धगत भेद को छोड़कर शेष सभी भेद बताये हैं। कुलपति मिश्र ने मुख्यत: अठारह भेद इस प्रकार निरूपित किए हैं - अविवक्षितवाच्यध्वनि-2, विवक्षितवाच्यध्वनि-असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य-1,संलक्ष्यक्रमव्यंग्य-शब्दशक्ति-2, अर्थशक्ति-12, उभयशक्ति-1। अन्य भेदों का ग्रन्थ विस्तार के भय से वर्णन नहीं किया।[1] भिखारीदास 43 भेद मानते हैं। अन्य सारा वर्गीकरण तो मम्मट की तरह ही है लेकिन अर्थशक्ति के 12 भेद न मानकर (कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढोक्ति सिद्ध को स्वीकार नहीं किया है) 8 भेद माने हैं। ये 14 भेद ही वाक्यगत भी 14 और शब्दार्थ शक्ति को

1- पद समूह पद ग्रंथ ध्वनि संकर अरु संसृष्टि।
टरपि ग्रन्थ बिस्तार तें करी न नित सौं दृष्टि।।
र.र.वृ.वृ. छन्द सं० 20

छोड़कर पदगत-13, प्रबन्धगत-1, स्वयंलक्षित-5, आर्थी व्यंजना-10, कुल मिलाकर 43।[1] प्रतापसाहि ने भी केवल मम्मट के ही वर्गीकरण को स्वीकार किया है। कुँवरकुशल ने भी केवल 18 भेद ही माने हैं -

अविवक्षित वाच्य जु उभै क्रम व्यंग्य ध्वनि कीय ।।
शब्द अर्थ शक्ति जु सही उभय शकति सुन लीय ।।
इति सब भेद अठारहू उत्तम काव्य उचारि ।।
सरिक्ष कवि पै जिमि सुनै बरनै तिमि सु विचारि ।।[2]

अत: 'लखपति जससिन्धु' में प्रमुख भेदों का ही वर्णन मिलता है। व्यर्थ के विस्तार में कुँवरकुशल नहीं पड़े हैं।

<u>मध्यम काव्य :</u>

अर्थवत्ता की दृष्टि से काव्य का दूसरा प्रकार मध्यम काव्य है। कुँवरकुशल ने इसका लक्षण देते हुए कहा है कि 'जहाँ पर अर्थ अर्थात् वाच्यार्थ व्यंग्य के समान ~~देते हुए कहा~~ ही आवे वहाँ ~~वह~~ मध्यमकाव्य माना जाता है।'[3] मम्मट का कथन है कि वह काव्य मध्यम काव्य है जिसमें व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा विशेष चमत्कारक नहीं होता इसीलिए जिसे 'गुणीभूतव्यंग्य' काव्य कहा गया है।[4] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के मतानुसार- जहाँ व्यंग्य अर्थ वाच्य से उत्तम न हो अर्थात् वाच्य अर्थ के समान ही हो या उससे न्यून हो, उसे गुणीभूतव्यंग्यकाव्य कहते हैं। इसमें व्यंग्य गुणीभूत

1- भिखारीदास-सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 61

2- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 97, 98

3- अरथ व्यंग्य सम आनिजै। मध्यम काव्य सुमानि ।। वही, च.त.

4- अतादृशि गुणीभूतव्यंगम् व्यंग्ये तुमध्यमम्। काव्यप्रकाश, पृ0 15

4- अपरं तु गुणीभूतव्यंग वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये।
साहित्यदर्पण, पृ0 149

अर्थात् अप्रधान होता है।[1] रसगंगाधरकार जगन्नाथ उसे द्वितीय काव्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं जहाँ पर व्यंग्य अप्रधान ही रहे प्रधान नहीं रहे और तब भी चमत्कार का जनक हो।[2] हिन्दी में कुलपति मिश्र वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ की समानता में मध्यमकाव्य की निहिति मानते हैं।[3] भिखारीदास का मत है कि जिस व्यंग्यार्थ में चमत्कार न हो वही गुणीभूतव्यंग्य है।[4]

इन परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में देखने पर विदित होता है कि कुँवरकुशल की मान्यता साहित्यदर्पणकार के आधार पर दी गई है। परन्तु यह भी विश्वनाथ के लक्षण का पूर्वार्द्ध है, उत्तरार्द्ध को नहीं लिया गया है। कुँवरकुशल व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ की समानता में ही मध्यमकाव्य की सार्थकता मानते हैं जैसा कि कुलपति मिश्र ने भी कहा है। विश्वनाथ व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ की समानता के साथ-साथ व्यंग्यार्थ की न्यूनता भी स्वीकार करते हैं। अत: कुँवरकुशल की परिभाषा मध्यमकाव्य के एक विशेष प्रकार 'तुल्ययोगिता गुणीभूत-व्यंग्य' पर ही घटित होती है जिसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ की समानता अपेक्षित है। मध्यमकाव्य के अन्य प्रकारों का समावेश उक्त लक्षण में नहीं हो पाता। अत: कुँवरकुशल का लक्षण एकांगी है।

1- अपरं तु गुणीभूतव्यंग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये। साहित्यदर्पण, पृ0 149

2- यत्र व्यंग्यमप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणम् तद् द्वितीय ।।
रसगंगाधर, पृ0 85

3- व्यंगि अरथ सम सुषाद जहां मध्यम कहिये सोइ ।
र.र.प्र.वृ.

4- जा व्यंगारथ में कछू, चमत्कार नहिं होइ ।
गुनीभूत सो व्यंगि है, मध्यम काव्यौ सोइ ।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 61

मध्यमकाव्य के भेद :

सभी विद्वानों ने मध्यमकाव्य के आठ भेदों का उल्लेख किया है। कुँवरकुशल ने ये आठ भेद इस प्रकार निरूपित किए हैं -

कहि अगूढ पर अंग कौ अर्थहि कौ उपजाउ।
अस्फुट संदेहीरू सम काक असुंदर गाउ ।।[1]

मम्मट ने भी इसी क्रम से भेद बताये हैं।[2]

1- अगूढ :- मम्मट ने अगूढ गुणीभूत व्यंग्य काव्य के तीन भेद बताये हैं - (1) अर्थान्तर संक्रमितवाच्यरूप व्यंग्य की अगूढता।
(2) अत्यन्त तिरस्कृतवाच्यरूप व्यंग्य की अगूढता (3) अर्थशक्ति मूलसंलक्ष्यक्रम रूप की अगूढता। कुँवरकुशल ने इसके किसी भेद का उल्लेख नहीं किया है। अगूढ मध्यमकाव्य का जो उदाहरण कुँवरकुशल ने दिया है वह इस प्रकार है -

अंग की जोति जगाउं लसैं ललकैं बलकैं मुख बोल सुनायें।
और सो औरी न राखत प्रीति सो कान्ह कुमार महा मन भाये।
फूली फिरौ हौ सखी सब मैं तुम कोटि कटाछिन नैन नचाये।
मोसों दुरावत बात कहा सब गांउ मैं नेह नगारे बजाये ।।[3]

कुलपति मिश्र ने भी इसी प्रकार उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर कुँवरकुशल ने अपना उदाहरण प दिया है।[4]

1- ल.ज.सिं0,स.त.छन्द सं0 1

2- अगूढमपरस्यांगम वाच्यसिद्ध्यंगमस्फुटम्।
सन्दिग्धंतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तम सुन्दरम् ।। काव्यप्रकाश,पृ0 137

3- ल.ज.सिं0स.त.छं0 सं0 2

4- प्रेम पुलकित झलकत जोति अंग अंग दुरै न दुराये क्यों करति त्यौरतेह के।
अंकुर जम्यों हो हुलस्यों बसोइ हिये माँझ बेली लहकति ज्यों परसहोतभेद औ
मोहू सौं दुरावति है बातनि बनाइ करि सुनत हैं कछु कहति लोग गेह के।
फूली फूली फिरै सब बगर बगर अब नगर नगर मैं नगारे बाजे नेह के।
र.र.च.वृ.छन्द सं0 3

2- पर अंग को :- इसे मम्मट ने अपरांग तथा कुलपति मिश्र ने अंग और को कहा है। यहाँ पर रस अंगभूत होकर आता है जिन्हें रसवत् अलंकार कहते हैं। कुँवरकुशल ने रस तथा भाव की अंगरूपता तथा भावोदय आवशान्ति इत्यादि को मिलाकर कुल दस प्रकार की अंगरूपता बताई है। मम्मट ने नौ प्रकार की अंगरूपता बताई है। कुँवरकुशल द्वारा निरूपित 'भाव की अंगरूपता रस के प्रति' नामक अंगरूपता का वर्णन मम्मट ने नहीं किया है। यहाँ पर भाव रस का अंग बनकर आता है। कुँवरकुशल ने इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है -

पांनी फूल पांन पूजा किय हरषि चढ़ावति है उपहार।
पिय संगि मोहि कहति है पदमिनिकासी बास देहु किरतार।[1]

यहाँ पर शृंगार रस के साथ-साथ देवरति भाव भी उपस्थित है। इसके अतिरिक्त मम्मट और कुँवरकुशल में जो अंतर दृष्टिगत होता है वह उनके नामकरण में है। कुँवरकुशल ने 'रस की अंगरूपता रस के प्रति' को तो रसवत् अलंकार ही कहा है। मम्मट ने जहाँ 'भाव की अंगरूपता भाव के प्रति' को प्रेयस्वित अलंकार कहा है, वहीं कुँवरकुशल ने भाव की अंगरूपता रस के प्रति को प्रेयस्वित अलंकार कहा है और 'भाव की अंगरूपता भाव के प्रति' को कोई नाम नहीं दिया है। कुँवरकुशल द्वारा दिये गये कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

रसाभास की अंगरूपता एक भाव के प्रति :-

चाहि कै चूंमत है मुख कोउ औ कोउ अलिंगन लेत है जैसे।
कोउ उरोजनि कौं मरदै अरु कोउ भुजा गहै हाथ तैं तैसे।
बेनी गहै नर कोउ निहारत चाहत भोग कुलावत वैसे।
लाखा महीपति बाल सुनौ तुअ बैरी वांम फिरैं बन ऐसे।[2]

1- ल.ज.सिं० स.त.छन्द सं० 5

2- वही- छन्द सं० 8

यहाँ पर यह बताया गया है कि महाराज लखपति के शत्रुओं की ~~पत्नी~~ पत्नियाँ वन में बड़ी ही दुर्दशा में घूम रही हैं। यहाँ पर श्रृंगार रस का रसाभास रूप में आया है और राजारतिभाव ध्वनि का अंग बनकर आया है। मम्मट[1] ने भी ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत किया है। परन्तु अंतर केवल इतना है कि सैनिकों का अनेक नारियों के साथ वर्णन है और कुँवरकुशल ने एक नारी के साथ अनेक सैनिकों का वर्णन है। यहाँ पर रीतिकालीन प्रभाव दृष्टिगत होता है। डॉ० सत्यदेव चौधरी का भी यही मत है।[2] क्योंकि कुँवरकुशल ने जो उदाहरण दिया है उसका आधार कुलपति मिश्र के रस-रहस्य का उदाहरण है।[3]

<u>भाव का अंग भावोदय :</u>

भामिनि के संग भुवन में शत्रु रमत सुख साथ।
लखपति रूप सुचित्र लखि थर थर धूजत हाथ।।[4]

महाराज लखपति जी के शत्रुगण अपने महलों में पत्नियों के साथ आनंदित हो रहे थे लेकिन जैसे ही लखपति जी के चित्र पर दृष्टि जाती है तो उनके हाथ काँपने लगते हैं। यहाँ पर डर का भाव उदय होने के कारण भावोदय है।

<u>3- वाच्यसिद्ध व्यंग्य :-</u> इसका उदाहरण निम्नलिखित है :-

1- बन्दीकृत्य नृप द्विषां मृगदृशस्ताः पश्यतां प्रेयसां
श्लिष्यन्ति प्रणमन्ति लान्तिपरितश्चुम्बन्ति ते सैनिकाः।
काव्यप्रकाश, पृ० 143

2- हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ० सत्यदेव चौधरी, पृ० 322

3- इक चुम्बन इक कर गहत, आलिंगन भरि बाँह।
तुम बैरिन की बाम बन, भ्रमति फिरति बिन नाह।।
र.र.च.वृ. छन्द सं० 9

4- वही- छन्द सं० 12

आलस्य भ्रम मूर्छा आरति अतिध्यार न आली पाति ।
बिरह भुयंगम विष सु बियोगिनि करी स्याम मुष कांति ।। [1]

विरह रूपी सर्प की विष रूपी बूँदों के कारण नायिका के मुख की कांति अथवा उज्ज्वलता श्यामवर्णी हो गई है और आलस्य, भ्रम, मूर्छा तथा आर्त(वेदना) से पीड़ित है। यहाँ पर बिरहानुभूति के कारण नायिका का सुंदर मुख मलिन पड़ गया है यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से प्रकट हो रहा है इसलिए यहाँ पर 'वाच्य सिद्धव्यंग्य' है। मम्मट के काव्यप्रकाश[2] के आधार पर कुँवरकुशल ने उक्त उदाहरण दिया है साथ ही उदाहरण के उत्तरांश में प्रयुक्त 'विरह भुयंगम' शब्द कुलपति मिश्र[3] के उदाहरण से गृहीत हुआ है।

4-अस्फुट :

इसका उदाहरण आईना-महल को दृष्टि में रखकर दिया गया है -

कै कै सिंगार सुहावने भावने कंत कै सुंदर मंदिर आई ।
नीकी बनी गजगामिनी कामिनि देह पै दामिनि कोटि बहाई ।।
कांत सुनांत कियो सनमांन बषांन कैं प्रेम की बात सुनाई ।
भौन मैं औरौ तमासौ भयो तहां भैचकी फेरि हसी विलषाई ।। [4]

यहाँ पर नायिका आईना-महल के आईने में अपने विभिन्न प्रकार के प्रतिबिम्ब देखकर आश्चर्यचकित होती है, अपना विकृत वेश देखकर हँसती है, भ्रमवश

1- ल.ज.सिं0,ष.त.छन्द सं0 86

2- भ्रमिमरति मलसहृदयतां प्रलयं मूर्च्छां तमः शरीरसादम् ।
मरणं च जलदभुजगजं प्रसह्य कुरुते विषं वियोगिनीनाम् । काव्यप्रकाश, पृ0 147

3- तन तलफत जलपति बचन तलप हुं कल छिनुं नाहि ।
बिरह भुयंगम विष करी हरी हरी मुख छाहि ।। र.र.च.वृ.छन्द सं0 15

4- ल.ज.सिं0स.त.छन्द संख्या 17

किसी अन्य स्त्री की कल्पना करके कुपित हो जाती है परन्तु ये भाव बहुत कल्पना करने के बाद आते हैं अर्थात् स्पष्टत: प्रकट नहीं होते। अत: यहाँ पर अस्फुट मध्यम-काव्य है।

5- सन्देहप्रधान :

इसके दो उदाहरण दिये गये हैं जिनमें से एक मम्मट के आधार पर दिया गया है और दूसरा कुलपति मिश्र के। इसका निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है -

पारवति के ओंठ बिंब पैं धरि इच्छा निरधार।
कियो सदा शिव प्रात समैं कहीविलोचनन व्यापार ।।[1]

पार्वती के बिम्ब सदृश होठों को शिवजी देखते हैं। यहाँ पर यह सन्देह है कि शिवजी सहज रूप से ही होठों को देख रहे हैं, अथवा चुम्बन की इच्छा से देख रहे हैं। मम्मट ने भी ऐसा ही उदाहरण दिया है।[2] कुँवरकुशल ने उदाहरण में थोड़ा अंतर कर दिया है। मम्मट जहाँ चन्द्रोदय की बात करते हैं, कुँवरकुशल प्रात:काल का वर्णन करते हैं।

6-तुल्यबाचक प्रधान अर्थ सम्सुखदायक :

मम्मट ने इसे 'तुल्यप्राधान्य व्यंग्य' कहा है। इसका उदाहरण भी मम्मट से प्रभावित है।

1- ल.ज.सिं0,स.त.छन्द सं0 19

2- हरस्तु किंचित्परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारंभ इवाम्बुराशि :।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास बिलोचनानि ।।
काव्यप्रकाश, पृ0 149

7- काकु :

काकु मध्यम काव्य का उदाहरण इस प्रकार है -

जोरावर सेनानि कौ मंथन न करूं जुद्ध दु:सासन हीयकौ लोहिन निकारूगो।
लंबी ललकार किये दुर्योधन भूपति कैं भारी गदा कौ उठाय अंग पै न मारूगो।
कोरव के बंस कौ संहार नांहि करिहो मैं जबर भुजा के बल ते जागहन टारूगो।
संधिबात सुनि भीम दूत सौं कहै संदेस जाय कहौ वाहि वेगि मैं न मान
गारूंगों ।।[1]

यहाँ पर भीम की उक्ति है। अभावात्मक वर्णन के द्वारा भावात्मक कथन है। नहीं करूँगा से अर्थ निकलता है करूँगा। यह उदाहरण भी मम्मट पर आधारित है।[2] परन्तु एक अन्तर है। मम्मट ने जो उदाहरण दिया है उसमें भीम की उक्ति सहदेव के प्रति है। परन्तु कुँवरकुशल के उदाहरण की अंतिम पंक्ति से विदित होता है कि संधि का प्रस्ताव दुर्योधन का दूत लेकर आया है जिसे भीम अस्वीकृत कर देते हैं। वास्तव में ऐसा कथन महाभारत में नहीं मिलता। महाभारत का युद्ध होने तक दुर्योधन तो संधि प्रस्ताव के लिए कभी भी सहमत नहीं हुआ था। अत: कुँवरकुशल का कथन सत्यता पर आधारित नहीं है।

8- असुन्दर :- उदाहरण

कोलाहल पंछिनी कौ कानि सुन्यौ ततकाल ।।
कांम जग्यौ घरकांम तज बिकल भई वह बाल ।।[3]

1- ल.ज.सिं0,स.त.छं0 सं0 22

2- मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्
दु:शासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्त:।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपति: पणेन ।।

काव्यप्रकाश, पृ0 150

3- ल.ज.सिं0,स.त.छन्द सं0 23

पक्षियों का कोलाहल कानों से नायिका ने सुना तो उसके शरीर में कामभावना उद्दीप्त हो गई, घर का काम भी करना छोड़ दिया और वह व्याकुल हो गई। मम्मट ने जो उदाहरण दिया है[1] उसमें अंतर है। मम्मट ने जहाँ अंग की शिथिलता द्वारा कामोद्दीपन की बात कही है वहीं कुँवरकुशल ने स्पष्ट ही 'काम जग्यौ' शब्दों का उल्लेख किया है। कुलपति मिश्र[3] ने कुछ भिन्नता के साथ तथा भिखारीदास[4] ने भी इसी प्रकार का उदाहरण दिया है।

मम्मट ने 'गुणीभूतव्यंग्य' के अवांतर भेदों का भी वर्णन किया है परन्तु कुँवरकुशल ने इस ओर कोई संकेत नहीं किया है।

अवर काव्य : कुँवरकुशल के मतानुसार- जहाँ पर शब्द और अर्थ की आश्चर्यकारिता विद्यमान हो वहाँ अवरकाव्य होता है:-

शब्द अरथ है चित्र सो अवरू काव्य मैं आंनि।[4]

मम्मट अवर(अधम) काव्य उसे कहते हैं जहाँ पर व्यंग्यार्थ का अभाव रहा करता है।[5] कुलपति मिश्र भी व्यंग्य का अभाव तथा शब्द और अर्थ की चित्रात्मकता स्वीकार करते हैं।[6] भिखारीदास के मतानुसार भी व्यंग्यार्थ की प्रतीति न हो ऐसा

1- वाणीरकुडंगुड्डीणसउणकोलाहलं सुणन्तीए।
घरकम्मवावडाए बहुए सीअन्ति अंगाइं।। काव्यप्रकाश,पृ0 150

2- मुख पियरी देखै हरी हरी डार कर लीन ।
लेति उसास निसास अति सिथल अंग मनदीन। र.र.च.वृ.छं0 सं0 21

3- बिहग-सोर सुनि सुनि समुझि पछवारे की बाग ।
जाति परी पियरी खरी प्रिया भरी अनुराग ।
भिखारीदास(द्वितीय खण्ड)सं0-विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ0 66

4- ल.ज.सिं0,च.त.छन्द सं0

5- शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरम् स्मृतम्। काव्यप्रकाश,पृ0 16

6- सबद अरथ है चित्र जह व्यंग न अवर सु होइ।
र.र.प्र.वृ.

सरल काव्य अवर काव्य है।[1] उक्त विद्वानों की परिभाषाओं से कुँवरकुशल की परिभाषा भिन्न है। अन्य विद्वान् अवर काव्य में व्यंग्यार्थ का अभाव स्वीकार करते हैं । कुँवरकुशल मात्र चित्रात्मकता का ही उल्लेख करते हैं । अवर काव्य दो प्रकार का होता है शब्दचित्र तथा अर्थ चित्र। मम्मट और भिखारीदास ने शब्द चित्र और अर्थचित्र का एक-एक उदाहरण दिया है। कुँवरकुशल ने कुलपति मिश्र की भाँति यह कहकर छोड़ दिया है कि इसका विवेचन शब्दालंकार के अंतर्गत करेंगे । शब्दालंकार के अंतर्गत चित्रालंकार के रूप में चित्रण किया गया है। अत: हम भी 'अलंकार-निरूपण' के अध्याय में ही इसका विवेचन करेंगे ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि कुँवरकुशल ने ध्वनि के समस्त भेदों प्रभेदों का विस्तृत विवेचन किया है। ध्वनि के ही अंतर्गत रस का विवेचन करके (रसध्वनि के रूप में) प्रकारान्तर से ध्वनि के पश्चात् द्वितीय स्थान रस को ही दिया है। केशवदास के लगभग 50 वर्ष पश्चात् 'काव्य प्रकाश' तथा 'साहित्यदर्पण' का आधार लेकर चलनेवाली परंपरा के ही अंतर्गत कुँवरकुशलका भी स्थान रहा है। कुँवरकुशल ने भी 'काव्यप्रकाश' तथा 'साहित्यदर्पण' (रसविवेचन में) के आधार पर विवेचन किया है। कुँवरकुशल ने अपने से पूर्व केशवदास तथा कुलपति मिश्र का भी यथास्थान प्रभाव ग्रहण किया है।जहाँ जिसका मत स्पष्ट प्रतीत हुआ है, वहाँ उसी मत को ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त कुँवरकुशल 'ब्रजभाषा पाठशाला' में विद्यार्थियों को ब्रजभाषा की दीक्षा भी दिया करते थे। विद्यार्थियों को [illegible] शीघ्र समझ में आ जाये ऐसा दृष्टिकोण भी उनके समक्ष रहा था। इसलिए ही सरल भाषा में अपना आशय प्रस्तुत किया है। उदाहरणों के सम्बंध में भीयही कहा जा सकता है। 'काव्यप्रकाश के साथ -साथ कुलपति मिश्र के भी उदाहरणों को ग्रहण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है तथापि उन्हें वैसा का वैसा ही ग्रहण न करके कुछ परिवर्तन के साथ ही लिया है। इनका उद्देश्य तो समझाने का ही रहा था। अत:

1- बचनारथ रचना जहाँ, व्यंगि न नेकु लखाइ ।
सरल जानि तहि काव्य कों, अवर कहैं कबिराइ।।
भिखारीदास(द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र,पृ0 66

जहाँ पर व्यर्थ का विस्तार समझते थे, उसका परित्याग कर दिया , जैसे ध्वनि के 51 भेद न लेकर प्रमुख अठारह भेद ही विवेचित किये हैं, उनके पश्चात और वाक्यगत भेदों का उल्लेख नहीं किया है। दूसरे, रस विवेचन में भरतमुनि के सूत्र के चार प्रमुख व्याख्याताओं में से केवल अभिनवगुप्त का ही नाम दिया है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वे शेष तीन व्याख्याताओं भट्ट लोल्लट, शंकुक, तथा भट्ट नायक के नामों से परिचित नहीं थे। वरन् इसलिए कि कुँवरकुशल से पूर्व संस्कृत में सभी विद्वानों द्वारा उन व्याख्याताओं की चर्चा की जाती रही है। अतः इसे व्यर्थ समझकर उनका उल्लेख नहीं किया है। यों भी कालान्तर में अभिनवगुप्त का ही मत सर्वमान्य रहा है। इससे उनकी अपनी विचारणा-शक्ति तथा संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति व प्रमुख आशयों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति का संकेत मिलता है।

--